वैशाली

वैशाली महोत्सव समिति के लिए

वैशाली निकुञ्ज मुजफ्फरपुर

द्वारा प्रकाशित

सम्पादक—

डा० सुविमल चन्द्र सरकार, एम० ए०,
डी० फिल० (ऑक्सन)

प्रोफेसर योगेन्द्र मिश्र, एम० ए०, साहित्यरत्न
(रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी)

प्रकाशन के सर्वाधिकार वैशाली संघ (महोत्सव समिति) द्वारा सुरक्षित हैं।

कृतज्ञता ज्ञापन

इस पुस्तक को "वैशाली-निकुंज" मुजफ्फरपुर ने इतने अल्प समय में तैयार करके "वैशाली महोत्सव" समिति को बहुत आभारी किया है। इसका श्रेय वैशाली-निकुंज के अध्यक्ष पं० रामदेव शर्मा को है, जिनके प्रति समिनि कृतज्ञता ज्ञापन करती है। बोस प्रेस के व्यवस्थापक श्री अरुण कुमार बोस की तत्परता के लिए भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

वैशाली कैम्प
२०-३-४५

संयोजक
वैशाली महोत्सव समिति।

सम्पादकीय भूमिका

प्रथम वैशाली महोत्सव (३१ मार्च और १ अप्रैल, १९४५ ई०) के अवसर पर इस महोत्सव के प्राण श्री जगदीश चन्द्र माथुर, आई० सी० एस० का विचार हुआ कि एक पुस्तक का प्रकाशन भी होना चाहिये जिसमें देश भर के विद्वानों के वैशाली सम्बन्धी निबन्ध रहें। उक्त विचारानुसार उनने हम पर इस पुस्तक का भार सौंपा। समय कम था, किन्तु कार्य का औचित्य समझ कर हमने भार स्वीकार कर लिया। इस अल्प समय में पुस्तक जैसी भी हो सकी है, आपके सामने है। इस सम्बन्ध में हिन्दी-जगत् की ओर से माथुर साहब को जितना भी धन्यवाद दिया जाय थोड़ा होगा, क्योंकि यदि वे इस महोत्सव-यज्ञ का अनुष्ठान न करते तो यह पुस्तक कदापि न निकल सकती।

जिन २ लेखकों ने अपनी रचनाएँ देकर इस संग्रह-ग्रन्थ को सफल बनाने की चेष्टा की है, उनके हम परम कृतज्ञ हैं। पटना कालेज के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष डा० काली किङ्कर दत्त से हमें कई तरह की सहायता मिली है, जिस कारण वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। श्री देवदत्त चित्रकार और श्री उपेन्द्र महारथी को हम धन्यवाद देते हैं क्योंकि उनने अपनी अमूल्य कृतियां हमें इस पुस्तक में सम्मिलित करने के लिये दी हैं। पुरातत्त्व विभाग के सेन्ट्रल सर्कल के अध्यक्ष श्री एच० एल० श्रीवास्तव यदि वैशाली विषयक पुस्तकों से समय पर हमारी सहायता न करते, तो कई अच्छे लेख और सुन्दर चित्र इस संग्रह में न दिये जा सकते। अतः वे

हमारे ही नहीं, समस्त हिन्दी-संसार के धन्यवादभाजन हैं। इस सम्बन्ध में हम पटना कालेज लाइब्रेरी के अधिकारियों—विशेषकर लाइब्रेरियन श्री अमरेन्द्र नाथ बनर्जी—के भी ऋणी हैं। श्री पशुपतिनाथ पथिक 'बाकरपुरी', बी० ए० ने भी कई प्रकार से हमारी सहायता की है और एतदर्थ हमारे धन्यवाद के भागी हैं।

अन्त में हम इस पुस्तक को समय पर निकालने के लिये 'वैशाली निकुञ्ज' (मुजफ्फरपुर) के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री रामदेव शर्मा को बार बार धन्यवाद देते हैं, जिनकी कार्यतत्परता का यह 'वैशाली' नमूना है।

३० मार्च, १९४५

एस० सी० सरकार
योगेन्द्र मिश्र

विषय-सूची

—अभिषेक—

चित्रकार—श्री उपेन्द्र महारथी ।

[श्री दिनकर]

ओ भारत की भूमि बन्दिनी ! ओ जंजीरोंवाली !
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़ कर जन्मी थी वैशाली ?
वैशाली ! इतिहास-पृष्ठ पर अंकन अंगारों का,
वैशाली ! अतीत-गह्वर में गुंजन तलवारों का,
वैशाली ! जन का प्रतिपालक, गण का आदिविधाता !
जिसे ढूंढ़ता देश आज उस प्रजातंत्र की माता ।
रुको एक क्षण पथिक ! यहां मिट्टी को शीश नवाओ
राजसिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ ।
डूबा है दिनमान इसी खँडहर में डूबी राका,
छिपी हुई है यहीं कहीं धूलों में राजपताका ।
ढूंढ़ो उसे, जगाओ उनको जिनकी ध्वजा गिरी है
जिनके सो जाने से सिर पर काली घटा घिरी है ।
कहो, जगाती है उनको बन्दिनी बेड़ियोंवाली
नहीं उठे वे तो न बसेगी किसी तरह वैशाली ।

× × × ×

फिर आते जागरण-गीत टकरा अतीत-गह्वर से
उठती है आवाज एक वैशाली के खँडहर से ।
"करना हो साकार स्वप्न को तो बलिदान चढ़ाओ
ज्योति चाहते हो तो पहले अपनी शिखा जलाओ ।
जिस दिन एक ज्वलन्त पुरुष तुम में से बढ़ आयेगा
एक एक कण इस खँडहर का जीवित हो जायेगा ।
किसी जागरण की प्रत्याशा में हम पड़े हुए हैं
लिच्छवि नहीं मरे, जीवित मानव ही मरे हुए हैं ।"

वैशाली महोत्सव—
उसका उद्देश्य और आदर्श

[श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस०]

प्रभात के अर्धनील कोहरे से आवृत्त एक अस्पष्ट स्वप्ननगरी की भांति मनोरम वैशाली की सौन्दर्य-गाथा आपको विद्वानों के इस लेख संग्रह में मिलेगी। मैं अभी एक भावुक जिज्ञासु की श्रेणी में हूं, इसलिए वैशाली-विषयक ज्ञान के प्रसार की अनधिकार चेष्टा नहीं करूँगा। जिस महोत्सव के अवसर पर यह सग्रह प्रकाशित हो रहा है उसकी भी अपनी कथा और महत्ता है जिसके विवरण का भार मुझे सोंपा गया है।

बात पुरानी होते हुए भी नई है। जिस धरती पर एकत्रित होकर हम उस स्वर्णिम सभ्यता का अभिवादन कर रहे हैं वहां आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व अनेक कर्मठ स्त्री और पुरुष जीवन के संघर्ष में संलग्न थे; विस्तृत कर्मान्तों (खेतों) में कड़ी धूप और हवा के थपेड़ों को सहते हुए किसान अन्न उपजाता था; वाणिज्य-ग्राम में असंख्य मुद्राओं का कारबार चलता रहता था; सिंह-सेनापति जैसे महान् योद्धाओं के नेतृत्व में जाति रक्षा में कटिबद्ध हजारों नवयुवक जान पर खेलते थे; और गम्भीर एवं अनुभवी भन्तेगण वृजि की शासन-समस्याओं को सुलझाते थे।

कुछ अंशों में जीवन का यह प्रवाह आज भी वैशाली नहीं तो अन्यत्र भारतवर्ष में उसी भांति जारी है। किसान का पसीना, व्यापारी की तराजू, सैनिक का बलिदान और शासक का आदेश—इन सभी के संयोग तो आज भी हमारे जीवन की रूपरेखा निर्धारित है फिर भी हमें अपना जीवन जान पड़ता है मानो स्वादहीन भोजन को शरीर-रक्षा के ही निमित्त खाये जा रहे हों। सो क्यों?

हमारे और लिच्छवियों के जीवन में एक महान अन्तर यह है,—कि हम जीवन का संघर्ष जानते हैं, गति नहीं। आज वैशाली के प्रांगण में उद्योग है, उल्लास नहीं; परिश्रम हैं, नृत्य नहीं; कोलाहल है, गान नहीं। लिच्छवियों ने कर्म और आमोद के समन्वय को अपना आदर्श रखा; दिन भर की मेहनत के बाद क्या किसान, क्या वणिक, क्या राजकुमार सभी सम्मिलित हो नृत्य और गान किया करते थे, झुंड के झुंड युवक और युवतियां वन-विहार और आखेट के लिए मीलों जंगल में निकल जाते; उन लोगों में स्वच्छन्दतापूर्वक परस्पर आमोद-प्रमोद, हास-परिहास होता था; प्रत्येक मास किसी न किसी प्रकार का उत्सव होता रहता था; और महोत्सवों में तो दूर दूर से लिच्छवि स्त्री और पुरुष वैशाली में आकर जीवन की मादक तरंग में अपने आपको भुला देते थे।

यह सामूहिक आनन्द की भावना आज भारत से तिरोहित हो गई है, विशेषत: देश के उसी भाग से जहां लिच्छवियों का आवास था। शादियों और जनेऊ-संस्कारों में जहां तहां व्यक्ति हजारों रुपये खर्च करके कुछ मनो-रञ्जन भले ही करलें किन्तु सामाजिक महोत्सवों एवं सामूहिक नृत्य और संगीत की प्रथा हमारे बीच से उठ-सी गई है। चट्टान की तरह कठोर,

रेगिस्तान की तरह शुष्क जीवन का भार लिए वैशाली का आधुनिक प्रतिनिधि कालयावन कर रहा है।

कारण अनेक हैं, उपचार भी अनेक। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में विकास हमें वैशाली के सर्वाङ्गीण जीवनादर्श की ओर उन्मुख करता है। लेकिन उसके साथ-साथ उसी सामूहिक आंनन्द की भावना को भी जागृत करता है। वैशाली महोत्सव इसी भावना को जागृत करने की एक प्रयास है। आये दिन हम जन संस्कृति और प्रगतिशील कला एवं साहित्य का नाम सुनते हैं। जो संस्कृति और जो कला ग्रामीण जनता के दैनिक जीवन को छु सके, उसी में जन्में और उसी में पनप सके वही राष्ट्र के नवजीवन निर्माण में सहायक हो सकती है, वही प्रगतिशील है।

पुरातन वैशाली की संस्कृति में इसी प्रगतिशीलता का पुट था। प्रत्येक लिच्छवि के अधिकार बराबर थे इसीसे उनमें आत्म विश्वास था; ऊँचनीच का भाव कम था इसीसे परस्पर मिल कर उत्सवों में आनन्द मना सकते थे; सारा जीवन उनके लिए एक कला थी, किसी परोक्ष जीवन की तैयारी नहीं; इसीलिये उनकी सांधारण से साधारण वस्तु में कलाप्रियता दीख पड़ती है। उनके बच्चों के खिलौने, उनकी मुद्राएँ, उनके बरतन, उनके मकानों के शिखर, और उनके वस्त्राभूषण इत्यादि जिनके कुछ नमूनों का प्रदर्शन इस महोत्सव में किया गया है,—सब में वही कलात्मकता झलक पड़ती है। उल्काचेल में महाश्रमण गौतम बुद्ध को लेने के लिए लिच्छवियों का जो यूथ आया था उसके रंगबिरंगे और चमकदार कपड़ों और सजावट को देख गौतम ने लिच्छवियों की तुलना देवताओं से की थी। गौतम तत्कालीन सभी आसपास के राष्ट्रों से परिचित थे; स्वयं बिम्बसार के राज्य में उनका विशेष सम्मान किया गया था। लेकिन लिच्छवि जनता के प्रति उनका

जितना अनुराग था अन्य किसी जाति के प्रति नहीं। महावन में भ्रमण करते समय उनके सामने कतिपय लिच्छवि तरुण आखेट करते-करते आ पहुँचे और एक वृद्ध लिच्छवियों ने उन तरुणों की उद्दण्डता का वर्णन किया, तब भी गौतम ने लिच्छवि की सार्वजनिक आमोदप्रियता की प्रशंसा ही की।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राची के सभी राष्ट्रों में उस समय वैशाली की सभ्यता अद्वितीय थी। वह एक ऐसे आदर्श की पताका फहरा रही थी। जो एक समय आर्यावर्त की समस्त जातियों को अनुप्राणित करता था लेकिन उस समय विलुप्त होता जा रहा था। मगध और कोसल एवं अन्य जनपद एकतन्त्र प्रणाली को अपना चुके थे, लेकिन वैशाली—अकेली वैशाली—गण-तन्त्र की प्राचीन धरोहर को सुरक्षित रखे हुए थी। सम्राटों की अपरिमित आकांक्षाओं से अपने को बचाने के लिए वैशाली की गणतन्त्र प्रणाली को अक्षुण्ण रखने के लिए वहां के प्रत्येक निवासी को अपने आपको मजबूत और कठोर जीवन का आदी बनाना पड़ा था। तभी तो गौतम ने मगध मन्त्री वर्षाकार से कहा था कि जिस समय तक लिच्छवियों को आराम के जीवन से घृणा है, जिस समय तक वे कठोर शय्या पर शयन करते हैं और मेहनत और शारीरिक व्यायाम को पसन्द करते हैं उस समय तक उन्हें पराजित करना असम्भव है। प्राची के अन्य राष्ट्रों की साधारण जनता इस आदिम आर्य जाति के आदर्श से दूर होती जा रही थी। साधारण नागरिक अपनी जिम्मेवारी को भूल गया था चूँकि उसे अपनी और अपनी जाति की रक्षा के लिए राजा का आसरा लेने की आदत हो गई थी। यही कारण था कि उसने आत्मरक्षा, शरीर-परिचर्या और आमोद-प्रमोद की भावना से दूर हटना प्रारम्भ कर दिया था। यही प्रवृत्ति धीरे-धीरे आर्यावर्त में जड़ पकड़ती गई, और ज्यों ज्यों यहां एकतन्त्र राजाओं के बल और प्रभाव

[बाद

का विस्तार होता गया त्यों-त्यों ही साधारण जनता में मनोरंजन, अमोद-प्रमोद, नृत्य और गान एवं सामूहिक आनन्द के प्रति अरुचि पैदा होती गई, और उसके बदले एक परोक्ष जीवन की दूरस्थ टिमटिमाती हुई ज्योति की ओर वह आकृष्ट होती गई। भारतीय इतिहास का यह पहलू मनस्वियों के लिए बिचारणीय है।

मैं यह नहीं कहता कि परोक्ष जीवन की धारणा ह्रास का लक्षण थी। हम यह नहीं भूल सकते की इस धारणा ने ही भारतवर्ष को आध्यात्म-क्षेत्र की अमूल्य देन दी हैं; इसी भावना ने भारतवर्य को हीनावस्था में भी संसार के अन्य देशों की आँखों में ऊँचा उठा रखा है। इसी वैशाली में आध्यात्म की नूतन बिचार-धाराएँ निःसृत हुइ थी। लेकिन साथ ही वैशाली के शरीर धर्म के आदर्श का भी उत्थान अनिवार्य है, विशेषतः इस समय जब कि जीवन की उन्नति के लिए जीवन के प्रति अनुराग की आवश्यकता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा देश सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक उन्नति की ओर उन्मुख हो तब हमें यह भी चाहिए कि हम साधारण जनता के दैनिक जीवन में सामूहिक आनन्द और कलाप्रियता पैदा करें। हम उन्हें बतायें कि मानव शरीर एक अनुपम देन है; मानव जीवन की महत्ता उसे सर्वविधिपूर्वक सम्पन्न बनाने में है, केवल परोक्ष जीवन की तैयारी में बिताने के लिये नहीं।

वैशाली महोत्सव के मनाने में हमलोगों का मुख्य उद्देश्य यही है कि हम साधारण जनता में अपने जीवन के प्रति अनुराग पैदा कर सकें। जब मैंने आज से छः मास पूर्व इस महोत्सव के मनाने का प्रस्ताव कुछ लोगों के सामने पहले पहल रखा उस समय मेरा मूल-बिचार यही था कि किसी भांति जन साधारण के सूने और सूखे जीवन में रस-सचार किया जाय। वैशाली की भांति भारतवर्ष के अन्य स्थानों में भी खंडहर हैं जिनके पुनर्निमाण में

हाथ लगाया जा चुका है। लेकिन ईंटों और पत्थरों के खंडहरों के साथ साथ हमें मनुष्य-जीवन के खंडहर में जान डालनी है। हमारे जीवन से जो सामूहिक आनन्द की भावना अन्तर्ध्यान हो गई है उसे फिर से जान्हवी के तुल्य देवलोक से उतार कर लाना है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिय तो भगीरथ जैसे कर्मठ महान् व्यक्तियों की आवश्यकता है; उतनी क्षमता हम लोगों में कहां, लेकिन जिस योजना में हम आज अपने नन्हे-नन्हे हाथ लगा रहें हैं शायद वह अपनी आन्तरिक महत्ता के कारण ही कभी न कभी सफल हो जाय, आज नहीं तो अगले वर्ष, अगले वर्ष नहीं तो दस वर्ष बाद। इसी में हमारी आशा हैं, इसी में हमारे देश का कल्याण!

संस्कृत-महाकाव्यों और पुराणों में

वैशाली

[ले०—प्रो० जगन्नाथराय शर्मा, एम० ए०; पटना-विश्वविद्यालय]

'वैशाली' या 'विशाला' एक प्राचीन नगरी है। पुराणों में इसे विशाल, विशाला तथा वैशाली ये तीन नाम दिये गये हैं। इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। पाटलिपुत्र नगर से तो यह अवश्य ही प्राचीन है। जहां वाल्मीकीय रामायण में विशाला के नाम से इसका और इसके संस्थापक तथा उसके वंशजों का वंशावली-वर्णन मिलता है वहां पाटलिपुत्र नगर की चर्चा भी नहीं है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि यदि पाटलिपुत्र नगर गंगा के दक्षिण कूल पर उस समय तक बना होता तो रामचन्द्र उसके सम्बन्ध में भी विश्वामित्र से प्रश्न अवश्य करते। भगवान रामचन्द्र के समय से लगभग ८-१० पीढ़ी पूर्व विशाला नगरी का निर्माण हो चुका था। यह भागवतपुराण और वाल्मीकीय रामायण दोनों ही के आधार पर सिद्ध है। पाटलिपुत्र नगर का निर्माण अजातशत्रु के समय में हुआ था यह बात प्रसिद्ध है। अजातशत्रु बुद्धदेव का समकालीन था; अतः पाटलिपुत्र नगर का निर्माण केवल ढाई हजार वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु विशाला की प्राचीनता का पता लगाना कठिन है। उसके सम्बन्ध में हम सिर्फ यही कह सकते हैं कि उसका निर्माण आधुनिक ऐतिहासिकों की दृष्टि से प्रागैतिहासिक-काल में भगवान् रामचन्द्र से साल]

भी आठ-दश पीढ़ी पूर्व हुआ था। उसकी प्राचीनता की गणना वर्षों में न कर युगों में ही करना उचित होगा।

वैशाली की चर्चा बाल्मीकीय रामायण के आदिकाण्ड के ४५ वें, ४६ वें और ४७ वें सर्गों में की गई है। ४५ वें सर्ग में यह कहा गया है कि इसी स्थान पर देवों और दानवों ने समुद्रमंथन की मन्त्रणा की थी। ४६ वें सर्ग में दिति की उस तपस्या का वर्णन है जो उसने इन्द्र को मारने वाले पुत्र की उत्पत्ति के लिए की थी। उसी सर्ग के अन्त में तथा ४७ वें सर्ग के प्रारम्भ में इन्द्र के प्रयत्न से दिति की तपस्या का विफल होना वर्णित है। इसके पश्चात् ४७ वें सर्ग के अन्त में विशाला के निर्माण का इतिहास निम्नलिखित ढंग से दिया गया है—

इक्ष्वाकु की रानी अलम्बुषा के एक परम धार्मिक पुत्र हुआ, जिसका नाम था विशाल। उसी ने इस स्थान में विशालापुरी बनवाई।[1]

इसके अनन्तर विशाल से लेकर रामचन्द्र के समकालीन और उनका आतिथ्य करने वाले विशाला नरेश सुमति तक की वंशावली दी गई है। वह इस प्रकार है—

(१) विशाल, (२) हेमचन्द्र, (३) सुचन्द्र, (४) धूम्राश्व, (५) सृञ्जय, (६) सहदेव, (७) कुशाश्व, (८) सोमदत्त, (९) काकुत्स्थ और (१०) सुमति।

विशाल नरेशों के सम्बन्ध में महर्षि विश्वामित्र ने यह कहा है कि वे सब इक्ष्वाकु की कृपा से दीर्घायु, महात्मा, वीर्यशाली और धार्मिक हुए।[2]

---

१ इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परम धार्मिकः। अलंबुसायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः। तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ॥११-१२॥ (सर्ग ४७; वा० रामायण आदिकाण्ड)

२ इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।

केवल चार पुराणों में वैशाली या विशाला की चर्चा पाई जाती है। ये हैं—वाराह, नारदीय, मार्कण्डेय और श्रीमद्भागवत। वाराह पुराण के सातवें अध्याय में विशाल राजा के गया में पिण्डदान करने से उनके पितरों की मुक्ति कही गई है।३ उसी पुराण के ४८ वें अध्याय में भी एक विशाल राजा का उल्लेख है, पर वे काशी नरेश थे वैशाली नरेश नहीं। नारदीय पुराण के उत्तर खण्ड के ४४ वें अध्याय में भी विशालानरेश विशाल की चर्चा की गई है और यह कहा गया है कि वे त्रेता युग में थे। पुत्रहीन होने के कारण पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने पुरोहितों की राय से गया में पिण्ड-दान किया और अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह का नरक से उद्धार किया; किन्तु वहां पर विशाल के पिता का नाम 'सित' बतलाया गया है। सम्भव है इक्ष्वाकु का दूसरा नाम 'सित' रहा हो। मार्कण्डेय पुराण में सूर्य्यवंश-वर्णन के प्रसंग में विशाल राजा का नाम आया है। वहां अवीचित् और वैशालिनी की कथा दी गई है और यह कहा गया है कि वैशालिनी विशालानरेश विशाल की कन्या थी। किन्तु श्री मद्भागवत के अनुसार अवीचित् विशाल से ११ पीढ़ी पहले था। विशाल ने ही वैशाली बसाई तब फिर अवीक्षित का विवाह वैशाली नरेश की कन्या से कैसे हुआ? अतः वैशालिनी की कथा कल्पित सी प्रतीत होती है। मार्कण्डेय पुराण और श्री मद्भागवत की वंशावलियां बहुत कुछ एक सी हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि श्री मद्भागवत में राजाओ का केवल नामोल्लेख मात्र है। किन्तु मार्कण्डेय पुराण में उनमें से प्रसिद्ध राजाओं का चरित्र विस्तार से वर्णित है। श्री मद्भागवत

दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवंतः सुधार्मिकाः ॥
(वा० रामायण, सर्ग ४७, श्लोक १८)

३ देखिए—वराहपुराण, अध्याय ७, श्लो० १३–१४

के नवम् स्कन्ध के प्रथम अध्याय में सूर्यवंश का वर्णन दिया हुआ है। इसके अनुसार वैवस्वतमनु और उसकी पत्नी श्रद्धा के दश पुत्र हुए। इनके नाम हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, जरूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि। भागवत् पुराण के अनुसार विशाल इक्ष्वाकु का पुत्र नहीं था, वरन् उसके भाई दिष्ट के वंश में उत्पन्न हुआ था। उसकी माता का नाम उक्त पुराण के अनुसार भी अलम्बुषा ही था। श्रीमद्भागवतके अनुसार विशाल के पूर्वजों और वंशजों की सूची यों है—

(१) दिष्ट, (२) भलन्दन, (३) वत्सप्रीति, (४) प्रांशु, (५) प्रमति, (६) खनित्र, (७) चाक्षुष, (८) विविंशति, (६) रम्भ, (१०) खनिनेत्र, (११) करन्धम, (१२) अवीक्षित, (१३) मरुत्त, (१४) दम, (१५) राज्य-वर्द्धन, (१६) सुधृति, (१७) नर, (१८) बन्धुमान्, (१६) वेगवान्, (२०) बन्धु, (२१) तृणविन्दु, (उसकी पत्नी अलम्बुषा) (२२), विशाल (इसी ने वैशाली बसायी)४, (२३) हेमचन्द्र, (२४) धूम्राक्ष, (२५) संयम, (२६) कृशाश्व (उसका भाई देवज या सहदेव), (२६) सोमदत्त, (२८) सुमति, (२६) जनमेजय।५

श्री मद्भागवत पुराण में जो वंशावली दी गई है, उसके अनुसार इक्ष्वाकु के भाई दिष्ट से लेकर रामचन्द्र के समकालीन सुमति तक २८ पीढ़ियां बीत चुकी थीं। किन्तु बालमीकी रामायण की वंशावली के अनुसार इक्ष्वाकु से लेकर सुमति तक केवल दश ही पीढ़ियां बीती थीं। अब इन दोनों वंशा-

---

४ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीम् निर्ममे पुरीम।

[भा० पुराण, नवम स्कंध अ० २, श्लो० ३३]

५ एते वैशाल भूपालाः तृणविन्दोर्यशोधराः।

[भा० पु० नवम स्कंध, अध्याय २, श्लो० ३६]

[दश

वलियों में कौन सी ठीक है, इसका निर्णय करना आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि बाल्मीकीय रामायण को छोड़कर और कहीं विशाल का इक्ष्वाकु का पुत्र होना वर्णित नहीं है। भागवत् के अनुसार इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे जिनमें से विकुक्षि (शशाद), निमि और दण्डक ये तीन ही प्रसिद्ध थे। विकुक्षि अयोध्या का, निमि मिथिला का और दण्डक दण्डकारण्य का राजा था। यदि विशाला का निर्माता विशाल भी इक्ष्वाकु का ही पुत्र होता तो वह भी प्रमुख माना जाता और अन्य ६ पुत्रों के साथ उसकी गणना न करके इक्ष्वाकु के इन तीन पुत्रों के साथ ही उसकी भी गणना होती। अत: श्री मद्भागवत पुराण के अनुसार विशाल इक्ष्वाकु का पुत्र नहीं होना ही सत्य प्रतीत होता है। वह इक्ष्वाकु के वंश में है अवश्य; किन्तु वह उसका औरस सन्तान नहीं। अत: उसको दिष्ट का पुत्र मानना ही उचित प्रतीत होता है।

बाल्मीकीय रामायण की वंशावली पूरी-पूरी वंशावली नहीं है। इस बात का प्रमाण रामचन्द्र के विवाह के समय में वशिष्ठ द्वारा महाराज दशरथ के पूर्वजों का वर्णन है। उसके अनुसार इक्ष्वाकु से लेकर रामचन्द्र तक ३५ पीढ़ियां बीत चुकी थीं। तब इक्ष्वाकु से या उसके भाई दिष्ट से लेकर सुमति तक केवल दश ही पीढ़ियां कैसे बीतीं? बाल्मीकीय रामायण के अनुसार विशाल के राजा दीर्घायु थे पर कितने भी वे दीर्घायु क्यों न हों, रामचन्द्र के तीन-तीन पूर्वजों के समय तक सुमति के एक-एक पूर्वज राज्य करते रहे हों—यह सर्वथा अविश्वसनीय है। अत: हमारी समझ से श्रीमद्भागवत पुराण में जो वैशाली नरेशों की वंशावली दी गई है, वह सम्भव और सत्य है; क्योंकि उसके अनुसार दिष्ट से लेकर सुमति तक २८ पीढ़ियां बीती हैं और बाल्मीकीय

---

६ देखिए—वा० रामायण, सर्ग ७१, श्लो० १६ से ४५ तक।

रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु से लेकर रामचन्द्र तक ३५ पीढ़ियां बीती हैं। वैशाली-नरेश दीर्घायु प्रसिद्ध ही हैं, अतः जब तक इक्ष्वाकु के वंश में ३५ राजे हुए तब तक दिष्ट के वंश में २८ राजाओं का होना असम्भव नहीं कहा जा सकता।

विशाला के इस इतिवृत्त के अतिरिक्त उसके विस्तार और वैभव का वर्णन महाकाव्यों और पुरानों ने सम्यक रूप में कहीं नहीं दिया है! किन्तु वैशाली की यह प्राचीनता और उसके नरेशों की अविछिन्न वंशपरम्परा तथा महात्म्य और पराक्रम से यह सूचित होता है कि वैशाली चिरकाल तक शान्ति और समृद्धि का केन्द्र थी।

वैशाली के लिच्छवि

[ले०—डा० दिनेशचन्द्र सरकार, एम० ए०, पीएच० डी०
कलकत्ता विश्वविद्यालय]

बिहार प्रान्त के अन्तर्गत मुजफ्फरपुर जिला में गंडक नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित आधुनिक बसाढ़ को ही पुरातन नगरी वैशाली समझा जाता है। इसी को पाली साहित्य में वसाली और रामायण तथा पुराणों के कतिपय सन्दर्भों में विशाला कहा गया है। कहा जाता है कि राजा विशाल के नाम पर ही इस नगरी का यह नाम पड़ा है। रामायण के अनुसार विशाल इक्ष्वाकु के पुत्र थे पर पुराणों के अनुसार ये इक्ष्वाकु के भ्राता नाभाग के वंशज थे। साहित्य में तो विशाल के कई उत्तराधिकारियों का उल्लेख मिलता है। यदि उपर्युक्त परम्परागत कथानक स्वीकार कर लिया जाय तो यह मान लिया जा सकता है कि ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शाक्यमुनि गौतम के जन्म ग्रहण के कई शताब्दी पूर्व ही वैशाली नगरी का प्रादुर्भाव हो चुका था।

ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल में बुद्ध और महावीर के के समय में वैशाली नगरी प्रजातन्त्रवादी लिच्छवि जाति के अधिकार में पाई जाती है। किन्तु यहां राजन्तत्र से प्रजातन्त्र में रूपान्तर होने का कारण अभी तक अज्ञात है। इस समय लिच्छवि जाति आठ जातियों के संघ वृजि (पाली में वज्जि) का एक सदस्य थी। संघ में सम्मिलित होनेवाली आठ जातियों में वृजि, लिच्छवि, विदेह, और ज्ञात्रिक ही महत्वपूर्ण थे।

विद्वानों का विचार है कि शेष चार जातियां संभवत: भोग, उग्र, इक्ष्वाकु, और कुरू थीं। वैशाली केवल लिच्छवियों ही की राजधानी नहीं थी, वरन् समस्त संघ की प्रमुख नगरी थी। परम्परागत कथानक के अनुसार शक्तिशाला लिच्छवियों ने बुद्ध के समकालीन बिम्बसार के समय में मगध (दक्षिण विहार) पर आक्रमण किया था; पर बिम्बसार के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अजातशत्रु के समय में पासा पलट गया। उसने वज्जि संघ छिन्न भिन्न कर दिया और परिवर्द्धित मगध साम्राज्य में उत्तर विहार को उदरस्थ कर लिया।

इसके बाद लिच्छवियों का उल्लेख नेपाल के शासक के रूप में मिलता है। माना जाता है कि लिच्छवि राजा सपूर्ण नेपाल अथवा उसके खंड विशेष पर सन् ८७६ ई० तक राज्य करते रहे जब राघव देव ने उस देश को जीत लिया और नेपाली संवत् चलाया। किन्तु नेपाल में लिच्छवि शक्ति की स्थापना का काल निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता। नेपाली लिच्छवियों के प्रारम्भिक शिला लेख एक अनिर्णीत संवत् ३८६ और ५३५ के बीच के है। इस अनिर्णीत संवत् को इन्द्रजी सन् ५८ ई० पूर्व प्रारम्भित विक्रमीय संवत् फ्लीठ साहब सन् ३२० से प्रारम्भित गुप्त संवत् और लेवी साहब सन् ११० ई० से प्रारम्भित एक अन्य ही अज्ञात संवत् होने के अनुमान करते है। हमलोग इसे सन् ७८ ई० से प्रारम्भित शक संवत् होने के पक्ष में हैं। अत: उपरोक्त तिथियां हमलोगों की सम्मति में सन् ४६४ ई० और सन् ६१३ ई० हैं। किन्तु लिच्छवियों की जड़ नेपाल में अवश्य ही पांचवी शताब्दी के मध्यकाल के बहुत पूर्व ही जम गई होगी; क्योंकि ३८६ साल (सन् ४६४ ई०) वाला सर्व प्रथम शिला लेख केवल लिच्छवि राजा मानदेव का ही उल्लेख नहीं

करता वरन् उनके तीन पूर्वज धर्मदेव, शकरदेव तथा वृशदेव का भी उल्लेख करता है जिन्होंने अवश्य ही लगभग एक शताब्दी तक शासन किया होगा। इतिहास के विद्यार्थियों को पूर्ण रूप से ज्ञात है कि मगध के गुप्तवंश के सर्व प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त (सन् ३२०–३३५) ने अपना विवाह लिच्छवि राज कन्या कुमारदेवी से किया था, और भारतीय इतिहास का प्रथम विक्रमादित्य सुविख्यात समुद्रगुप्त (३३५–३७६ ई०) इन्हीं का पुत्र था। यह कोई असम्भव नहीं कि कुमार देवी प्रारम्भ के नेपाल के किसी लिच्छवि राजा की पुत्री हों। लेकिन गुप्तकालीन कुछ सिक्के, जिनके अग्रभाग पर चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमार देवीके चित्र और नाम अङ्कित हैं और पृष्ठ भाग पर बहुबचन में लिच्छवय: (अर्थात् लिच्छविलोग शब्द अङ्कित है, संभवत: संकेत करते है कि गुप्त लोगों के संम्बन्धी लिच्छवि एक प्रजातन्त्रवादी समुदाय थे जिनका आधिपत्य बिहार के कुछ भाग पर था। इसके सिवा गुप्त लोगों की मुद्राओं तथा शिला लेखों में लिच्छवियों को दी गई प्रधानता से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम का साम्राज्य सम्बन्धी स्थान बहुत अंशों में उसके लिच्छवियों से वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप था। सातवीं शताब्दीं में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने फेय-शे-ली (वैशाली) का वर्णन करते हुए उसे फू-ली-चीह (वृजि देश) से भिन्न बतलाया है।

ऊपर भारतीय इतिहास में लिच्छवियों की महत्ता का संक्षेप में संकेत किया गया है। पर प्रश्न यह उठता है कि आखिर ये लिंच्छवि थे कौन? कुछ बिद्वानों के मतानुसार लिच्छवि प्रारम्भ में तिब्बत निवासी थे। किन्तु यह निष्कर्ष इनकी न्याय पद्धति तथा मृतसंस्कार-विधि एवं तिब्बत के कतिपय प्रथा में जो समानता है उसीके आधार पर स्थित है। और लोग उक्त कल्पना का खंडन इस आधर पर करते हैं कि हमारा आरम्भिक बौद्ध-

कालीन-तिब्बती-सभ्यताविषयक ज्ञान नहीं के बराबर है विद्वानों की एक दूसरी मंडली का विचार है कि लिच्छवि प्रथमत: पारसी थे और फारस के निसिबी शहर से आये। इस सिद्धान्त का विरोध बहुत लेखकों ने किया है और वस्तुत: इसके पक्ष में कोई विश्वस्त प्रमाण भी नहीं है। एक प्रमुख लेखक ने लिच्छवियों को क्षत्रिय प्रस्तुत करने में भारतीय परम्परागत ऐक्य की ओर संकेत किया है। उनका निर्णय है कि लिच्छवि स्थानीय क्षत्रिय थे जो ब्राह्मण धर्म विरोधी जैन तथा बौद्ध धर्म के पक्के समर्थक होने के कारण जाति-च्युत कर व्रात्य बना डाले गये। मेरे विनम्र विचार में उपर्युक्त प्रमुख लेखक ने जो तर्क अपनी कल्पना की पुष्टी में उपस्थित किये हैं वे इस बात का विरोध नहीं करते कि सम्भवत: लिच्छवि प्रथमत: अनार्य थे और इनको मंगोल लोगों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, और इनका कालान्तर में हिन्दू समाज में समावेश हो गया।

यह सर्व विदित है कि इन्डोग्रीक (यवनो) और इन्डो सीथियन (शकों) को पतञ्जलि के महाभाष्य के काल में भी "अनिर्वासित शूद्र" माना गया था। मनुसंहिता (दशम् ४३-४४) के अनुसार पौन्डरिक (उत्तर-बंगाल निवासी) औद्र (उड़ीसा निवासी या चोद=चोल), द्राविड़ (तामिल) कम्बोज, यवन (यूनानी), शक, पार्द (पार्थियन), पल्हव (पल्हविया पारसी) चीनी, किरात, दरद(उत्तरी काश्मीरी) और खस (काश्मीर के आधुनिक खक्क) भी क्षत्रीय थे जो धीरे-धीरे, कतिपय धार्मिक अनुष्ठानों के परित्याग तथा ब्राह्मणों की उपेक्षा करने के कारण, पतित हो गये और म्रिशाल (अधर्मी पुरुष अथवा विजातीय या शूद्र) बना दिये जये। उसी रचना (दशम् २२) में झल्ल मल्ल (कुसिनारा और पावा के समीपवर्ती निवासी एवं लिच्छवियों के पड़ोसी) लिच्छवि, नट (व्यवसायी अभिनेता), करण (व्यवसायी लेखक), खस और

द्राविड़ को व्रात्य राजन् के वंशज अर्थात् पतित क्षत्रिय कहा गया है। यह कह देना अतिरोचक है कि मनु की दोनों ही तालिकाओं में खस और द्राविड़ के नाम आये हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इन दोनों अनुच्छेदों में वर्णित जातियों की सामाजिक स्थिति पूर्णतः अथवा करीब-करीब समान ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि पतञ्जलि ने साक्यों और यवनों को 'शुद्धि कृत' शूद्र और मनु ने "पतित क्षत्रिय" कहा है, और इन दोनों महान रचयिताओं द्वारा वर्णित इनकी सामाजिक स्थिति प्रायः समान ही है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि ऊपर के सांकेतिक मनु (दशम् ४३–४४) के प्रथम अनुच्छेद में उन लोगों को "क्षत्रिय जातयः" अर्थात् क्षत्रिय वर्ण (जन्म पर अवलंबित सामाजिक क्रम) की जाति (सामाजिक वर्ग) का कहा गया है। पतित क्षत्रियों की ऊपर लिखित सूची तथा मनु के पतित ब्राह्मण (दशम् २१) वैश्य (दशम् २३), और वर्णशंकर (विभिन्न वर्णों से उत्पन्न जाति) की सूची से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि यह योजना स्वेच्छित है। इसका प्रधान उद्देश्य प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित् सभी विदेशी जाति को चाहे वे आर्य हों या अनार्य हों अथवा व्यवसायी समूह हों, समाज के चार परम्परागत तथा काल्पनिक विभागों में उपयुक्त स्थान निर्धारित करना था। इस योजना में निस्सन्देह ही किसी समूह का स्थान उसकी महत्ता, संस्कृति एवं कार्य ही निर्धारित करता था। इसलिये यह स्वाभाविक है कि जिन समूहों का कार्य क्षत्रियवर्ण के परम्परागत कार्य के सदृश्य था उन्हें समाज में क्षत्रिय वर्ण में या उसके निकट स्थान मिले और लिच्छवि निस्सन्देह ही उसी जाति के थे।

यह भली भांति ज्ञात है कि भारतीय समाज आदि काल में "वर्ण"—श्वेत और श्याम के आधार पर दो भागों में विभाजित था। तत्पश्चात्

"वर्ण" शब्द का प्रयोग समाज के चार काल्पनिक विभागों के अर्थ में होने लगा। ऐसा संभवत: इसलिये हुआ कि सैनिक और कृषक वर्ग अंशत: श्याम वर्ण वाले आदि निवासियों मे मिश्रित हो गये। और आदि काल के आर्य वर्ण को खो बैठे। जाति शब्द का वास्तविक अर्थ जन्म है। कालान्तर से यह शब्द जाति समूह को संकेत करने लगा जिसके सदस्य जन्म द्वारा निश्चित होने लगे। बहुसंख्यक अनार्य जाति धीरे धीरे न्यूनाधिक *रूप में आर्य बन गई यद्यपि वे अपने कुलोत्पन्न विवाह सम्बन्धी* एवं खानदान सम्बन्धी रीति-रीवाज को अपनाये रहे। स्वभावत: उनलोगों का संकेत "जाति" शब्द से किया जाता था। कालान्तर से यह शब्द किसी भी सामाजिक समूह के अर्थ में जो दृढ़ सीमित हो गई हो प्रचलित हो गया।

वैशाली की दिव्य विभूति

[श्रीबलदेव उपाध्याय, एम. ए., साहित्याचार्य, प्रोफेसर संस्कृत-पाली विभाग
हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी ।]

वैशाली युगान्तर कारिनी नगरी है। इसकी गणना भारत की ही प्रधान नगरियों में नहीं की जा सकती, प्रत्युत संसार के कतिपय नगरियों में यह प्रमुख है—उन नगरियों में, जहां से धर्म की दिव्य ज्योति ने दम्भ तथा कपट के घने काले अन्धकार को दूर कर विश्व के प्राणियों के सामने मंगलमय प्रभात का उदय प्रस्तुत किया; जहां से परस्पर विवाद करने वाले, कणमात्र के लिए अपने वन्धुजनों के प्रिय प्राण हरण करने वाले क्रूर मानवों के सामने पवित्र भ्रातृभाव की शिचा दी गई; जहां से 'अहिंसा परमो धर्मः' का मन्त्र संसार के कल्याण के लिए उच्चारित किया गया। पाश्चात्य इतिहास उन नगरों की गौरव गाथा गाने में तनिक भी श्रान्त नहीं होता जिनमें प्राणियों के रक्त की धारा पानी के समान बही और जिसे वह भाग्य फेरने वाले युद्धों का रंगस्थल बतलाता है। परन्तु भारत के इस पवित्र देश में वे नगर हमारे हृदय-पट पर अपना प्रभाव जमाये हुए हैं जिन्हें किसी धार्मिक नेता ने अपने जन्म से पवित्र बनाया तथा अपने उपदेशों का लीला नगर प्रस्तुत किया। वैशाली ऐसी नागरियों में अन्यतम है। इसे ही जैन-धर्म के संशोधक तथा प्रचारक महावीर वर्धमान की जन्मभूमि होने का विशेष गौरव प्राप्त है। बौद्धधर्मानुयायियों के हृदय में कपिलवस्तु तथा लुम्बिनदेई के नाम सुनकर जो श्रद्धा और आदर का भाव जगमता है, जैनमतावल-

स्त्रियों के हृदय में ठीक वही भाव वैशाली तथा कुण्डग्राम के नाम सुनने से उत्पन्न होता है।

वैशाली के इतिहास में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। उसने बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल देखी। कभी वहां की राजसभा में मन्त्रियों की परिषद् जुटती थी; तो कभी वहां के संस्थागार में प्रजावर्ग के प्रतिनिधि राज्यकार्य के संचालन के लिए जुटते थे। कभी वंशानुगत राजा प्रजाओं पर शासन करता था, तो कभी बहुमत से चुना गया 'राजा' नामधारी अध्यक्ष अपने ही भाइयों पर उन्हीं की राय से उन्हीं के मंगलसाधन में सचिन्त रहता था। तात्पर्य यह है कि प्राचीन युग में वैशाली में राज्यतन्त्र की प्रधानता थी। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि जब राम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र ने यहां पदार्पन किया था, तब यहां के राजा सुमति ने उनका विशेष सत्कार किया था[1]। जैन सूत्रों तथा बौद्ध पिटकों में वैशाली प्रजातन्त्र की क्रीडास्थली के रूप में अंकित की गई है। भगवान बुद्ध ने अपने अनेक चातुर्मास्य यहीं विताये थे; इसमें चार प्रधान चैत्य थे—पूर्व के चैत्य का नाम था उद्यन, दक्षिण में गौतमक, पश्चिम में सप्तामुक, उत्तर में बहुपुत्रक चैत्य[2]। अम्लपाली नामक गणिका जो धार्मिक श्रद्धा तथा वैराग्य के कारण बौद्ध धर्म में विशेष प्रसिद्ध है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार वैष्णवधर्म में पिंगला—यहीं रहती थी। उसीका

---

१ तस्य पुत्रो महातेजा: सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्

आवसत्यमरप्रख्य: सुमतिर्नाम दुर्जय: १६

सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्

श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठ: प्रत्युगच्छन्महायशा: ॥ १६

—बालकाण्ड ४७ सर्ग।

२ द्रष्टव्य दीर्घनिकाय—महापरिनिब्बाण- सुत्त (नं० १३)

[पास

आम्रवन बुद्ध के उपदेश देने का प्रधान स्थान था। बुद्ध के समय लिच्छवि लोगों को यहां प्रजातन्त्र के रूप में हम शासन करते पाते हैं। इससे बहुत पहले हम यहां महावीर वर्धमान को जन्मते शिक्षा ग्रहण करते तथा प्रव्रज्या लेते पाते हैं। वर्धमान के समय में भी यहां गणतन्त्र राज्य ही था। वैशाली के इतिहास में कोई महान् परिवर्तन अवश्य हुआ होगा जिससे वह विशाला तथा मिथिला दोनों राज्यों की राजधानी बन गई तथा उसका शासन राज्यतन्त्र से गणतन्त्र हो गया। इस परिवर्तन के कारणों की छानबीन करना इतिहास प्रेमियों का कर्तव्य है।

वैशाली में अनेक विभूतियां उत्पन्न हुईं। परन्तु उनमें सब से सुन्दर विभूति है—भगवान् महावीर जिनकी प्रभा आज भी भारत को चमत्कृत कर रही है। लौकिक विभूतियां भूतलशायिनी बन गईं, परन्तु यह दिव्य विभूति आज भी अमर है और आनेवाली अनेक शताब्दियों में अपनी शोभा का इसी प्रकार विस्तार करती रहेगी। जैनधर्म से बौद्धधर्म बहुत पुराना है। इसका संस्थापन महाराज ऋषभदेव ने किया था, जैनियों की यही मान्यता है। तेइसवें तीर्थंकर *पार्श्वनाथ* वस्तुतः ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे महावीर से लगभग दो सौ वर्ष पहिले हुए थे। वे हमारी काशी के रहने वाले थे। महावीर ने उनके धर्म में नये संशोधन कर उसे नवीन रूप प्रदान किया। भारत का प्रत्येक प्रान्त जैनधर्म की विभूतियों से मण्डित है। ऐतिहासिक लोग पार्श्वनाथ को जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं और वर्धमान महाबीर को संशोधक। महाबीर गौतम बुद्ध के समसामयिक थे; परन्तु बुद्ध के निर्वाण से पहले ही उनका अवसान हो गया था। इस प्रकार वैदिकधर्म से पृथक् धर्मों के संस्थापकों में महाबीर वर्धमान् ही प्रथम माने जा सकते हैं और इनकी जन्मभूमि होने से वैशाली की पर्याप्तप्रतिष्ठा है।

वैशाली तथा उसके आसपास के प्रदेशों का प्रामाणिक वर्णन जैन सूत्रों में विशेष रूप से दिया हुआ है। इनकी विशद सूचना बौद्धग्रन्थों से भी उपलब्ध नहीं होती। इन प्रदेशों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:-

वैशाली का भौगोलिक वर्णन

वैशाली के पश्चिम ओर गन्डकी नदी बहती थी। यह नगरी बडी समृद्धिशाली थी। इसका भौगोलिक विस्तार भी न्यून था। गण्डकी के पश्चिमी तट पर अनेक ग्राम थे जो वैशाली के 'शाखा नगर' कहे जाते हैं। निम्नलिखित ग्रामों का परिचय मिलता है—

(१) *कुण्डग्राम*—इस नाम के दो ग्राम थे। एक का नाम 'ब्राह्मण कुण्डग्राम या कुण्डपुर था जिसमें ब्राह्मणों की ही विशेष रूप से बस्ती थी। दूसरे का नाम 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' था जिसमें क्षत्रियों का ही प्रधानतया निवास था। इनमें दोनों क्रमशः एक दूसरे से पूरब पश्चिम में थे। ये दोनों पास ही पास। दोनों के बीच में एक बड़ा बगीचा था जो 'बहुसाल चैत्य' के नाम से विख्यात था। दोनों नगरों के दो-दो खण्ड थे। 'ब्राह्मण कुण्डपुर' का दक्षिण भाग 'ब्रह्मपुरी' कहलाता था क्योंकि यहां ब्राह्मणों ही का निवास था। उत्तर ब्राह्मण कुण्डपुर के नायक ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण थे जिनकी भार्या का नाम 'देवानन्दा' था। ये दोनों पार्श्वनाथ के द्वारा स्थापित जैनधर्म के माननेवाले गृहस्थ थे। 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' के भी दो विभाग थे। दक्षिनी भाग में पांच सौ घर 'ज्ञाति' नामक क्षत्रियों के थे जो उत्तरी भाग में जाकर बसे हुए थे। उत्तर कुण्डपुर के नायक का नाम *सिद्धार्थ* था। ये काश्यपगोत्रीय ज्ञातिक्षत्रिय थे तथा 'राजा की उपाधि से मण्डित थे। वैशाली के तत्कालीन राजा का नाम था—चेटक जिनकी भगिनी (त्रिशला) का बिवाह सिद्धार्थ से हुआ था। इन्हीं *त्रिशला* और *सिद्धार्थ*

क कनिष्टपुत्र 'वर्धमान' थे जिनका जन्म इसी ग्राम में हुआ था।

(२) *कर्मारग्राम* —प्राकृत 'कम्मार' कर्मकार का अपभ्रंश है। अतः कर्मार का अर्थ है मजदूरों का गांव अर्थात् लोहारों का गांव। यह गांव भी कुण्डग्राम के पास ही था। महावीर प्रव्रज्या लेकर पहली रात को यहीं ठहरे हुये थे।

(३) *कोल्लाक संनिवेश*—यह स्थान पूर्व निर्दिष्ट ग्राम के समीप ही था। कर्मारग्राम में विहार कर महावीर ने यही पारणा की थी। उपासकदशा सूत्र के प्रथमाध्ययन में इस स्थान की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह नगर वाणिज्य ग्राम (जिसका वर्णन नीचे है) के तथा उसके बगीचे के बीच में पड़ता था।

(४) *वाणिज्य ग्राम*—यह जैन सूत्रों का 'वाणिज्यगाम'=बनियों का गांव है। गण्डकी नदी के दाहिने किनारे पर यह बड़ी भारी व्यापारी मंडी था, ऐसा जान पड़ता है यहां बड़े-बड़े धनाढ्य महाजनों की बस्ती थी। यहां के एक करोड़पति का नाम आनन्द गाथापति था जो महावीर के बड़े भक्त सेवक थे। आजकल की वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले की बसाढ़पट्टी) के पास बनिया ग्राम है। बहुत सम्भव है कि यह गांव 'वाणिज्यग्राम' का ही प्रतिनिधि हो।

बौद्ध ग्रन्थों के, विशेषतः दीघनिकायके अनुशीलन से पता चलता है कि बुद्ध के समय में वैशाली बड़ी समृद्धिशालिनी नगरी थी। उसमें ७ हजार ७ सौ ७७ महलों के होने का उल्लेख स्पष्टतः उसे विशाल तथा समृद्ध नगर बतला रहा है। नगर के भीतर अम्बपाली नामक बड़ी ही धनाढ्य और गुणवती गणिका रहती थी। ६ या ७ बड़े-बड़े चैत्यों के नाम मिलते हैं जहां भगवान् बुद्ध ने अपना चातुर्मास्य बिताया। इसके पास ही

'वेणुग्राम' का उल्लेख मिलता है जहां बुद्ध ने वर्षा में निवास किया था। इस वर्णन से स्पष्ट है कि वैशाली बड़ी नगरी थी जिसके उपनगर अनेक थे तथा उस समय खूब प्रसिद्ध थे।

वैशाली महावीर की जन्मभूमि

वैशाली को हमने महावीर वर्धमान की जन्मभूमि बतलाया है परन्तु आज कल सर्वसाधारण जैनियों की मान्यता है कि विहार में क्यूल स्टेशन से पश्चिम आठ कोस पर स्थित लच्छु-आड़ गांव ही महावीर की जन्मभूमि है, परन्तु सूत्रों की आलोचना से यह मान्यता निर्मूल ठहरती है। इस विषय में पं० कल्याणविजय जी गणि ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थ 'श्रमण भगवान् महावीर'[1], में जो विचार प्रकट किये हैं वे मेरी दृष्टि में नितान्त युक्तियुक्त हैं। पहली बात ध्यान देने योग्य यह है कि सूत्रों में महावीर विदेह के निवासी माने गये हैं। कल्पसूत्र ने महावीर को 'विदेहे विदेह दिन्ने विदेह जच्चे विदेह सूमाले' (अर्थात् विदेह विदेहदत्त विदेह जात्य विदेहसुकुमार) लिखा है। वे 'वैशालिक' भी कहे गये हैं। अतः इन्हें विदेह की राजधानी वैशाली का निवासी मानना अनुचित नहीं है।

(२) 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' के राजपुत्र जमालि ने ५०० राजपुत्रों के साथ जैनधर्म ग्रहण किया था। इससे यह कोई बड़ा समृद्ध नगर प्रतीत होता है। महावीर का प्रायः नियमसा था कि जहां कोई धनाढ्य भक्त हो वहां वर्षावास करना। अतः इस 'क्षत्रिय कुण्डग्राम' की प्रसिद्धि तथा समृद्धि के अनुकूल महावीर का वर्षावास करना नितान्त स्वाभाविक है, परन्तु यहां वर्षावास का बिल्कुल उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण

---

१ 'श्रमण भगवान् महावीर'— शास्त्रसंग्रह समिति, जालोर के द्वारा प्रकाशित, सं० १९९८, भूमिका पृष्ठ २५-२८।

क्या ? उचित तो यह मालूम पड़ता है कि यह नगर वैशाली के पास था। अत: वैशाली में वर्षावास करते समय उन्हों ने जो उपदेश दिया था उससे कुण्डग्राम के निवासियों ने लाभ उठाया। अत: यहां पृथक रूप से वर्षावास करने का उल्लेख सूत्रग्रन्थों में नहीं मिलता।

(३) प्रव्रज्या के अनन्तर महावीर ने जिन स्थानों पर निवास किया, उन स्थानों की भौगोलिक स्थिति पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि वे सब स्थान वैशाली के आसपास थे। दीक्षा लेने के दूसरे दिन महावीर ने कोल्लाक संनिवेश में पारणा की थी। जैन सूत्रों के आधार पर कोल्लाक संनिवेश दो हैं और वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर हैं--एक तो वाणिज्य ग्राम के पास और दूसरा राजगृह के पास। अब यदि वर्तमान जन्मस्थान को ही ठीक माना जाय, तो वहां से कोल्लाक संनिवेश बहुत ही दूर पड़ता है जहां एक ही दिन में पहुँच कर निवास करने की घटना युक्तियुक्त सिद्ध नहीं हो सकती। राजगृह वाला स्थान चालीस मील पश्चिम की ओर पड़ेगा और दूसरा स्थान इससे भी अधिक दूर। अत: महावीर को वैशाली का निवासी मानना ठीक है क्योंकि यहां से कोल्लाक संनिवेश बहुत ही समीप है।

(४) पं० कल्याणविजयजी ने जैन सूत्रों के आधार पर महावीर के चातुर्मास्य के बिताने के स्थानों का बड़ा ही सांगोपांग वर्णन किया है। महावीर ने प्रथम चातुर्मास्य आस्थिक ग्राम में बिताया और दूसरा राजगृह में। राजगृह जाते समय वे 'श्वेताम्बिका' नगरी से होकर गये और तदनन्तर गंगा को पार कर राजगृह में पहुँचे। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि श्वेताम्बिका श्रावस्ती से कपिलवस्तु की तरफ जाते समय रास्ते में पड़ती थी। यह प्रदेश कोशल के पूर्वोत्तर में और विदेह के पश्चिम में पड़ता था और वहां से राजगृह की तरफ जाते समय बीच में गंगा पार करनी पड़ती थी,

यह इन स्थानों की भौगोलिक स्थिति के निरीक्षण से प्रतीत होता है। आधुनिक क्षत्रियकुण्डपुर जहां बतलाया जाता है वहां से ये दोनों बातें ठीक नहीं उतरतीं। वहां से श्वेताम्बिका नगरी न तो रास्ते में पड़ती है और न राजगृह जाते समय रास्ते में गङ्गा को पार करने का अवसर आवेगा।

इन सब प्रमाणों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि वैशाली ही वर्धमान महावीर की जन्मभूमि थी, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। महावीर की मृत्यु 'पावापुर' में मानी जाती है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन से जान पड़ता है कि यह स्थान जिला गोरखपुर के वँडरौना के पास 'पप-उर' ही है। संगीति परियापसुत्त (दीघनिकाय ३३वां सुत्त) के अध्ययन से पता चलता है कि यहां मल्ल नामक गणतन्त्र लोगों की राजधानी थी जिसके नये संस्थागार (संठागार) में बुद्ध ने निवास किया। यह भी पता चलता है कि बुद्ध के आने से पहले ही निगंठ नातपुत्त का देहावसान हो चुका था और उनके भक्तों तथा अनुयायियों में मतभेद भी होने लगा था। बौद्ध ग्रन्थों में महावीर निगंठ नातपुत्त' के नाम से विख्यात हैं। 'नातपुत्त' तो ज्ञातिपुत्र हैं। ज्ञाति नामक क्षत्रियवंश में उत्पन्न होने से यह नाम पड़ा। 'निगंठ' निर्ग्रन्थ है जो संसार के ग्रन्थियों से युक्त होने के कारण केवल ज्ञान सम्पन्न वर्धमान की उस समय की उपाधि प्रतीत होता है।

जैनधर्म की विपुल उन्नति के कारण ये ही वर्धमान महावीर हैं जिनका जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राम में ५९९ ई० पू० तथा तिरोधान ५२७ ई० पू० पावापुर में हुआ। इनकी जीवन-घटनाये नितान्त प्रसिद्ध हैं। पार्श्वनाथ के द्वारा जिस जैनधर्म की व्यवस्था पहले की गई थी उसमें इन्होंने संशोधन कर समयानुकूल बनाया। पार्श्वनाथ ने चार महाव्रतों—अहिंसा, सत्य,

अस्तेय तथा अपरिग्रह—के विधान पर जोर दिया है, पर महावीर ने 'ब्रह्मचर्य' को भी उतना ही आवश्यक तथा उपादेय बतलाकर उसकी भी गणना महाव्रतों में की है। पार्श्वनाथ वस्त्रधारण करने के पक्षपाती थे, पर महावीर ने नितान्त वैराग्य की साधना के लिए यतियों के वास्ते वस्त्रपरिधान का बहिष्कार कर नग्नत्व को ही आदर्श आचार बतलाया है। आजकल के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों का विभेद इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से चला आता है।

महावीर ने व्यक्ति के लिए जो सन्देश प्रस्तुत किया है वह सदा मनुष्यों के हृदय में आशा का तथा उत्साह का संचार करता रहेगा। प्राणी अपना प्रभु स्वयं है। उसे अपने कर्मों के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति पर आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। जीव स्वावलम्बी है। जीव स्वतन्त्र है। वह अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न रहता है। उसमें अनन्त सामर्थ्य भरा हुआ है। वह इस सामर्थ्य को नहीं जानता, इसीलिए वह संसार में नाना क्लेशों को भोग रहा है परन्तु अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होते ही वह क्लेशमय बन्धनों से मुक्ति पाकर केवली होकर विचरने लगता है। जगत् के कोने-कोने में जीवों की सत्ता मानना, उन्हें किसी प्रकार भी हिंसा न पहुँचाना, मानव के अनन्त सामर्थ्य की पहचान करना—आदि सुन्दर शिक्षायें हमें वैशाली के इस महापुरुष ने सिखलाया है। इस दिव्य विभूति की यह वाणी सदा स्मरण रखने योग्य है कि जब तक व्याधियां नहीं बढ़तीं, जबतक इन्द्रियां अशक्त नहीं होतीं, तबतक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए, बाद में कुछ होने का नहीं —

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ
जावि दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे ॥

लिच्छवि-जीवन

[ले० श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव, अध्यापक--जिला स्कूल, मुजफ्फरपुर]

लिच्छवि वृज्जि-संघ के सदस्य थे, जिसमें और भी कई जातियां सम्मिलित थीं। ये सभी जातियां हिल-मिल कर रहती थीं, जिसके फल-स्वरूप वृज्जि-संघ एवं लिच्छवियों का दबदबा बहुत ही अधिक था।

लिच्छवि बड़े ही सहानुभूतिपरायण होते थे। जब एक लिच्छवि बीमार पड़ता था, तब दूसरे उसे देखने आते थे। यदि किसी एक के घर कोई माङ्गलिक कार्य होता था, तो अन्य सभी उसमें भाग लेते थे। उस समय की और आज की अवस्था में कितना वैषम्य है!

यदि कोई प्रतिष्ठ और बलशाली पुरुष दूसरे राज्य से आता था, तो ये सभी एकत्र हो उसका स्वागत करते थे।

लिच्छवि युवक बड़े ही सुन्दर होते थे और सुन्दरता एवं कला के प्रेमी थे। ये रंग-बिरंग के कपड़े पहनना बहुत पसन्द करते थे और बहुमूल्य रत्नों का बहुधा प्रयोग करते थे। इससे प्रकट होता है कि ये बहुत धी समृद्धिशाली एवं वैभववान् थे। तो क्या ये अन्य समृद्धिशालियों के सामन विलासी और आलसी थे? बिलकुल नहीं; कम-से-कम बुद्ध के समय तो अवश्य ही नहीं थे। संयुत्त निकाय में भगवान् बुद्ध कहते हैं—"भिक्षुओ! देखो किस प्रकार ये श्रमशील, प्रमादरहित और धनुर्विद्यानिष्णात लिच्छवि काठ का तकिया बना कर सोते हैं! मगधराज वैदेही पुत्र अजातशत्रु को इनमें कोई दोष न मिलेगा और न उसे इनसे लड़ने का कोई कारण ही उपलब्ध होगा। भिक्षुओ! यदि भविष्य में लिच्छवि शस्त्र-संचालन एवं पग-संचार में कोम-

लता से काम लेंगे तथा दिन उठने तक मुलायम गद्दीदार बिछावन पर आराम और सुख की नींद सोते रहेंगे, तो मगधराज वैदेहीपुत्र अजातशत्रु को इनमें दोष मिलेगा और उसे इनसे लड़ने का कारण भी उपलब्ध होगा।" इससे झलकता है कि लिच्छवि जहां एक ओर सौन्दर्य और कला के पुजारी थे, वहां दूसरी ओर महान् कर्मठ और शत्रुओं के हृदय में आतंक उत्पन्न करने वाले भी थे।

आखेट से उन्हें बहुत प्रेम था। बुद्ध के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। आखेट-प्रिय लिच्छवि युवक भी बुद्ध के सामने नतमस्तक हो उनके उपदेशामृत का पान करने लग जाते थे।

विनय पिटक में लिखा है कि लिच्छवियों में चोरी का नाम निशान भी न था।

मगध के मन्त्री वर्षकार से बुद्ध ने कहा था—"जब तक व्रज्जि अपने गुरुजनों का आदर करते हैं और उनके वचनों पर ध्यान देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं तथा जब तक अपनी जाति की औरतों या लड़कियों पर वे बलात्कार नहीं करते, तब तक उनकी अवनति नहीं होगी; वरन् वे उन्नति ही करेंगे।"

लिच्छवियों में शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाता था और लिच्छवि युवक शिक्षा-प्राप्ति के लिये दूर देशों को भी भेजे जाते थे। महालि ने तक्षशिला में शिल्प-शिक्षा पायी थी। वैशाली लौट कर उसने पांच सौ लिच्छवियों को यह विद्या पढ़ायी और इन नवीन शिक्षितों ने भी यही किया। फलस्वरूप लिच्छवियों में शिक्षा का तुरत प्रचार हो गया।

युद्ध विद्या एवं शिल्पकला के समान स्थापत्य पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। ललित विस्तर में लिच्छवियों के वैभवपूर्ण राजप्रासादों की चर्चा

है। भिक्षुओं के लिये चैत्य, विहार और मन्दिर बनवाने में भी ये बहुत उत्साह दिखलाते थे। संघ के लिये जो मकान बनाये जाते थे, उनका निरीक्षण स्वयं भिक्षुक ही करते थे। इससे भिक्षुओं की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। दीघनिकाय में बुद्ध ने वैशाली के चैत्यों की बहुत प्रशंसा की है।

तिब्बती ग्रन्थों में लिखा है कि विवाह के सम्बन्ध में लिच्छवियों में यह नियम था कि वैशाली में उत्पन्न लड़कियों की शादी उसी नगर में हो सकती थी, उसके बाहर नहीं। 'भिक्खुनी विभंग संघादिदेस' के लेखानुसार विवाहार्थी लिच्छवि लिच्छविगण से योग्य कन्या के चुनाव के लिये कहता था। स्त्रियों के सतीत्व के सम्बन्ध में उनके आदर्श बहुत ऊँचे थे और व्यभिचार महान् अपराध माना जाता था। बुद्ध ने स्वयं एक स्थान पर कहा है कि लिच्छवियों में औरतों या लड़कियों पर बलात्कार नहीं किया जाता और न नारी-अपहरण ही होता है। विवाह-बन्धन तोड़ने पर स्त्रियों को कड़ी सजा मिलती थी; किन्तु जो स्त्री संघ में प्रविष्ट हो जाती थी, उसके लिये यह नियम लागू नहीं होता था।

डा. विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है कि वैशाली के प्राचीन निवासियों में मुर्दों को गाड़ने की, जलाने की और कभी-कभी यों ही पक्षियों द्वारा खाये जाने के लिये बाहर छोड़ देने की प्रथा थी।

लिच्छवि अनेक प्रकार के उत्सव किया करते थे, जिनमें सब्बरत्तिबारो या सब्बरत्तिचारो प्रधान था। संयुत्त निकाय में लिखा है कि इस उत्सव में विविध प्रकार के संगीत होते थे और तत्सम्बन्धी बाजे बजाये जाते थे। थेरगाथा के लेखानुसार जब कभी वैशाली में कोई उत्सव होता था, तब सभी लोग इसमें भाग लेते थे। इस अवसर पर नृत्य, संगीत और पाठ हुआ करते थे। वस्तुतः लिच्छवि बड़े ही उत्सव-प्रिय थे और लिच्छवि जीवन अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण था।

वैशाली

[चीनी यात्री फाहियान]

वैशाली* नगर के उत्तर एक महावन † कूटागार विहार है–बुद्धदेव का निवास स्थान है–आनन्द का अर्द्धांग स्तूप है। नगर में अंबपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्धदेव का स्तूप बनवाया–अब तक वैसा ही है। नगर के दक्षिण ३ ली पर अंबपाली वेश्या का बाग है जिसे उसने बुद्धदेव को दान दिया कि वे उसमें रहें। बुद्धदेव परिनिर्वाण के लिये जब सब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले तो दाहिनी ओर वैशाली नगर को

---

*यह नगर मुजफ्फरपुर जिले में था। अब इसका खंढहर वैसर गांव के पास बखिरा में है। यहां अब तक अशोक का एक स्तंभ ३२ फुट ऊँचा है। खंडहर को राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यह १५८० फुट लंबा और ७५० फुट चौड़ा है। सुयेन-च्वांग ने इसे ४ ली से ५ ली तक लंबा चौड़ा लिखा है। अबुलफजल ने भी वेसर गांव का उल्लेख किया है।

†इसे कोई-कोई आरण्यद्वितल विहार लिखते हैं। लेगी ने इसे Double galleried Vihar लिखकर नोट में लिखा है—It is difficult to tell what was the peculiar form of this vihar from which it got its name; something about the construction of its :door or cup boards or galleries. अर्थात् यह समझ में नहीं आता कि यह कैसा विहार था। महावंश में इसे महावन और अन्यत्र महावन कूटागार लिखा है।

देख कर शिष्यों से कहा यह मेरी अंतिम ‡ विदा है। पीछे लोगों ने वह स्तूप बनवाया।

नगर से पश्चिमोत्तर ३ ली पर एक स्तूप है, नाम है 'धनुर्बाणत्याग।' नाम पड़ने का कारण यह है कि पूर्व काल में गगा के किनारे एक जनपद का एक राजा की छोटी रानी एक मांसपिंड जनी। बड़ी रानी ने द्वेष से कहा कि तू कुलक्षण जनी और तुरत एक लकड़ी की मंजूषा में रख कर उस पिंड को उसने गंगा में फेंक दिया। उतार पर एक जनपद का राजा सैर करने निकला था। पानी में उसने लकड़ी की मंजूषा देखी। खोला तो देखा उसमें एक सहस्र लड़के भरे पूरे न्यारे न्यारे हैं। राजा ने खिला पिला कर उनको सयाना और बड़ा किया। वे बड़े साहसी, प्रचंड, समर में द्वेषियों के ध्वंसकारी थे। होते होते अपने बाप—राजा—के जनपद पर उन्होंने चढ़ाई की। राजा इससे बहुत घबड़ाया। छोटी रानी ने घबड़ाने का कारण पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि उस राजा के एक सहस्र पुत्र अतुल साहसी और प्रचंड हैं। मेरे जनपद पर आक्रमण करना चाहते हैं। इसी से दुखी हूँ। छोटी रानी ने कहा—राजा घबड़ाओ मत। नगर के पूर्व की दीवार में एक ऊँचा बारजा बनवा दो, जब शत्रु आवेंगे मैं बारजे पर से सब को लौटा दूँगी। राजा ने जैसा कहा था किया। शत्रु आए। छोटी रानी बारजे से बोली, तुम मेरे बेटे हो, क्यों अनरीति करते हो। शत्रु

---

‡लेगी ने इसका अनुवाद "Here I have taken my last walk" और बील ने "In this place I have performed the last religious act of my earthly career" तथा अन्यों ने "This is the last place I shall visit" किया है पर हमारे मत से यह मेरी अंतिम विदा है—This is my last departure (from here) यह ठीक है।

बोले, तू कौन है जो कहती है कि हमारी माता है। छोटी रानी ने कहा, विश्वास न हो तो मुँह खोल कर इस ओर ताको। छोटी रानी ने दोनों हाथों से स्तनों को दबाया, प्रति स्तन से ५०० धाराएँ निकलीं और हजारों लड़कों के मुँह में पड़ीं। शत्रु जान गए कि यह माता है और उन्होंने धनुष-बाण डाल दिए। दोनों पिता-राजा-इस पर ध्यान करने लगे और प्रत्येक बुद्ध हो गए। दोनों प्रत्येक बुद्धों के स्तूप विद्यमान हैं।

पीछे जब भगवान ने बोधि प्राप्त कर शिष्यों को इस धनुर्बाणत्याग' स्थान को बताया, तब लोगों ने इस स्थान को जाना और स्तूप बना कर नाम धरा। वे हजारों छोटे लड़के भद्रकल्प के हजार बुद्ध हुए। बुद्धदेव ने इसी धनुर्बाणत्याग स्तूप के पास जीवनाशा त्यागी। बुद्धदेव ने आनन्द से कहा, मैं तीन मास में परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा। मार राजा ने आनन्द को मोहित कर लिया और वह भगवान से संसार में अधिक रहने के लिये न कह सका!

यहां से पश्चिम तीन चार ली पर एक स्तूप * है। बुद्धदेव के परि-निर्वाण से सौ वर्ष पीछे वैशाली के भिक्षु विनय के दश शील के विरुद्धाचरण

---

* यह द्वितीय धर्मसंघ का स्थान है। यहां बुद्धदेव के परिनिर्वाण से सौ वर्ष पीछे विनय पिटक का परायण किया गया था। विनय के दस नियमों को उल्लङ्घन करनेवाले भिक्षु 'वज्जिपुत्तका' कहलाते हैं। इनका नायक आनन्द का शिष्य 'यश' या 'यशद' था। दश शील ये हैं—पांच साधारण नियेध जैसे (१) जीवहत्या (२) अपहरण (३) व्यभिचार (४) मिथ्याभाषण और (५) सुरापान। और पांच व्यसन जैसे (१) अकाल-भोजन (२) नृत्य-गीतादि-अनुरक्ति (३) गंधमाल्यादि-व्यवहार (४) आराम शय्या-शयन (५) सुवर्ण-रौप्य-ग्रहण।

किया। यह कहा कि यह बुद्धदेव के वचनानुसार है। इस पर सब अर्हत और शीलस्थ भिक्षु ७०० श्रमणों ने मिलकर विनय के ग्रंथों का पारायण किया और मिलाया। पीछे लोगों ने इस स्थान पर स्तूप बना दिया, वह अब तक वर्तमान है।

आनन्द का परिनिर्वाण स्थान

इस स्थान से ४ योजन चलकर पांच नदियों के संगम † पर पहुँचे। आनन्द मगध से वैशाली परिनिर्वाण के लिये चले। देवताओं ने अजातशत्रु को सूचना दी। अजातशत्रु तुरत रथ पर चढ़ सेना साथ लिए नदी पर पहुँचा। वैशाली के लिच्छिवियों ने आनन्द का आगमन सुना, लेने को चले, नदी पर पहुँचे। आनन्द ने सोचा, आगे बढ़ता हूं तो अजातशत्रु बुरा मानता है, लौटता हूं तो लिच्छिवी रोकते हैं। निदान नदी के बीच में ही समाधित्रेताग्नि में उन्होंने परिनिर्वाण लाभ किया। शरीर का अंश दो भागों में विभक्त कर एक-एक भाग एक-एक किनाने पहुँचाया गया। दोनों राजाओं को आधा शरीरांश मिला। वे लौट आए और उन्होंने स्तूप बनवाया।

['चीनी यात्री फाहियान का यात्रा-विवरण' नामक पुस्तक से उद्धृत]

---

† यह वही स्थान है जहां सोन-गंडकादि गंगाजी में सोनपुर के पास मिली हैं।

[चौंतस

फयीशीली (वैशाली[1])

[ले० चीनी यात्री हुएनसांग]

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग पांच हजार ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है फल और फूल बहुत अधिक होते हैं, विशेष कर आम्र और मोच (केला) के फल, तथा लोग इनकी कदर भी बहुत करते हैं। प्रकृति स्वाभाविक और सह्य है, तथा मनुष्यों का आचरण शुद्ध और सच्चा है। ये लोग धर्म से प्रेम और विद्या की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। विरोधी और बौद्ध दोनों मिल-जुलकर रहते हैं। कई सौ सङ्घाराम यहां पर थे परन्तु सब के

---

[1] 'वैशाली' को जनरल कनिंघम साहब वर्तमान 'वेशाड' गांव निश्चय करते हैं। यहां अब भी एक डीह है जिसको लोग राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यह स्थान देगवार से उत्तर-पूर्व २१ मील पर है। वैशाली स्थान वृज्जी या वजी जाति के लोगों का मुख्य नगर था। ये लोग उत्तर-प्रदेश से आकर इस प्रान्त में बस गये थे। इनका अधिकार उत्तर में पहाड़ के नीचे से दक्षिण में गङ्गा के किनारे तक और पश्चिम में गण्डक से लेकर पूर्व में महानदी तक था। ये लोग यहां पर कब आये और कितने प्राचीन हैं इसका पता नहीं; परन्तु बौद्ध-पुस्तकों के निर्माण का जो काल है वही इनका भी है। चीनी ग्रन्थकारों ने भी इनका उल्लेख किया है।

सब खँडहर हो गये हैं, जो दो चार बाकी भी हैं उनमें या तो साधु नहीं हैं, और यदि हैं तो बहुत कम। दस बीस मन्दिर देवताओं के हैं जिनमें अनेक मतानुयायी उपासना करते हैं।

वैशाली का प्रधान नगर अत्यन्त अधिक उजाड़ है। इसका क्षेत्रफल ६० से ७० ली तक और राजमहल का विस्तार ४ या ५ ली के घेरे में है। बहुत थोड़े से लोग इसमें निवास करते है। राजधानी के पश्चिमोत्तर ५ या ६ ली दूरी पर एक सङ्घाराम है। इसमें कुछ साधु रहते हैं। ये लोग सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

इसके पास एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहां पर तथागत भगवान ने विमल कीर्ति के सूत्र का उपदेश दिया था, तथा एक गृहस्थ के पुत्र रत्नाकर तथा औरों ने एक बहुमूल्य छत्र बुद्धदेव को अर्पण किया था। इसी स्थान पर शारिपुत्र तथा अन्य लोगों ने अरहट दशा को प्राप्त किया था।

इस अन्तिम स्थान के दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप वैशाली के राजा का बनवाया हुआ है। बुद्ध भगवान के निर्वाण के पश्चात् इस स्थान के किसी प्राचीन नरेश ने बुद्धावशेष का कुछ भाग पाया था, और उसीके ऊपर उसने यह अत्यन्त बृहद् स्तूप निर्माण कराया[1]।

---

[1] लिच्छवी के लोगों ने भाग पाया था और स्तूप को बनवाया था। सांची के दृश्य में यह स्तूप दिखाया गया। इसमें के मनुष्यों की सूरत से प्रकट होता है कि वे लोग उत्तरीय जातिवाले थे। उनके बाल और वाद्य-यन्त्रादि भी उसी प्रकार के हैं जैसे यूची लोगों के वृत्तान्त में पाये जाते हैं। पाली भाषा की तथा उत्तर-देशीय बौद्धों की पुस्तकों में लिखा है कि लिच्छवी लोगों का रङ्ग जैसा साफ था वैसे ही उनके वस्त्रादि भी थे। इन

भारतीय इतिहास से विदित होता है कि पहले इस स्तूप में बहुत सा शरीरावशेष था। अशोक राजा ने उसको खोल कर उसमें से निकाल लिया और केवल एक भाग रहने दिया था। इसके पश्चात् इस देश के किसी नरेश ने द्वितीय बार इस स्तूप को खुदवाना चाहा था परन्तु उसके हाथ लगाते ही भूमि विकम्पित हो उठी, जिससे वह नरेश भयभीत होकर चला गया।

उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है जिसके पास एक पत्थर का स्तम्भ ५० या ६० फ़ीट ऊँचा बना हुआ है। इसके शिरोभाग में सिंह[1] की मूर्ति बनी हुई है। इस स्तम्भ के दक्षिण में एक तड़ाग (मर्कटह्रद) है जिसको बन्दरों ने बुद्ध भगवान् के लिए बनाया था। तथागत भगवान जब तक संसार में रहे तब तक बहुधा यहां पर आकर निवास किया करते थे। इस तड़ाग के दक्षिण में थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहां पर बुद्ध भगवान् का भिक्षा-पात्र लेकर बन्दर लोग वृक्ष पर चढ़ गये थे और उसको शहद से भर लाये थे।

इसके दक्षिण में थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर बन्दरों ने शहद लाकर बुद्धदेव के अर्पण[2] किया था। तड़ाग के पश्चिमोत्तर कोण में एक बन्दर की मूर्ति अब भी बनी हुई है।

सब बातों पर ध्यान देने से यही विदित होता है कि ये लोग यूची जाति के थे।

[1] लिच्छवि लोग सिंह कहलाते थे इस कारण कदाचित् यह सिंह भी उनकी जाति का बोधक हो।

[2] इस घटना का भी एक चित्र सांची में पाया गया है। यह एक स्तम्भ पर बना हुआ है जो वैशाली के लोगों की कारीगरी का नमूना है।

संघाराम के उत्तर-पूर्व में ३ या ४ ली की दूरी पर एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहां पर विमलकिर्ति[1] का मकान था। इस स्थान पर अनेक अद्भुत दृश्य दिखलाई देते हैं।

इसके निकट ही एक समाधि बनी है[2] जो केवल ईंटों का ढेर है। कहा जाता है कि यह ढेर ठीक उस स्थान पर है जहां पर रुग्नावस्था में विमलकीर्ति ने धर्मोपदेश दिया था।

इसके निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर रत्नाकर का निवास-भवन था।

इसके निकट एक स्तूप और है। यह वह स्थान है जहां पर आम्र-कन्या[3] का प्राचीन वासस्थल था। इसी स्थान पर बुद्ध की चाची और अन्य भिक्षुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया था।

संघाराम के उत्तर में ३ या ४ ली की दूरी पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर तथागत भगवान् आकर उस समय ठहरे थे, जब वह मनुष्यों और किन्नरों[4] को साथ लिये हुए निर्वाण प्राप्त करने कुशीनगर को जाते थे।

---

१ विमलकीर्ति वैशाली का निवासी और बौद्धधर्म का माननेवाला था। यद्यपि पुस्तकों में उसका वृत्तान्त बहुत थोड़ा मिलता है परन्तु तो भी ऐसा मालूम होता है कि उसने चीन की यात्रा की थी।

२ कदाचित् यह समाधि किसी वज्जन जातिवाले चेतयानी या यक्ष चेत-यानी की होगी जिसका वृत्तान्त महाणों तथा अन्य स्थानों में मिलता है।

३ यह एक वेश्या थी जिसका नाम अम्बपाली भी था। इसके जन्मादि का इतिहास Manual of Buddhism में लिखा है।

४ किन्नर कुवेर के यहां गानेवाले कहलाते हैं; जिनका मुख घोड़े के

[भारतीय

यहां से थोड़ी दूर पर उत्तर-पश्चिम दिशा में एक और स्तूप है। इसी स्थान से बुद्धदेव ने अन्तिम बार वैशाली नगरी का अवलोकन किया था। इसके दक्षिण में थोड़ी दूर पर एक विहार है जिसके सामने एक स्तूप बना हुआ है। यह वह स्थान है जहां पर आम्रकन्या का बाग था, जिसको उसने बुद्धदेव को अर्पण कर दिया था।

इस बाग के निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जिस स्थान पर तथागत भगवान् ने अपनी मृत्यु का समाचार प्रकट किया था। पूर्व काल में जब बुद्धदेव इस स्थान पर निवास करते थे तब उन्होंने 'आनन्द' से यह कहा था, "वे लोग जिनको चारों प्रकार का आध्यात्मिक बल प्राप्त है, कल्पपर्यन्त जीवित रह सकते हैं, फिर तथागत की मृत्यु का कौन सा काल निश्चय हो सकता है?" बुद्धदेव ने यही प्रश्न तीन बार आनन्द से पूछा परन्तु 'आनन्द' 'मार' के वशीभूत हो रहा था इस कारण उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके उपरान्त आनन्द अपने स्थान से उठकर जङ्गल में चला गया और वहां जाकर चुपचाप विचार करने लगा। उसी समय 'मार' बुद्धदेव के निकट आया और कहने लगा, "आपको संसार में रहते और लोगों को धर्मोपदेश देते और शिष्य करते बहुत दिन हो गये। जिन लोगों को आपने जन्ममरण के बन्धन से मुक्त कर दिया है उनकी संख्या बालू के कणों के बराबर है। अतएव अब उचित समय आ गया कि आप निर्वाण के सुख को प्राप्त करें।" तथागत भगवान् ने बालू के कुछ कण अपने नाखून पर रखकर 'मार' से पूछा, "मेरे नख पर के कण संसार भर की मिट्टी के बराबर हैं या नहीं?" उसने उत्तर दिया, "पृथ्वी भर की धूल परिमाण

समान बताया जाता है। जिस पत्थर पर यह चित्रकारी बनी है वह पत्थर वैशाली ही का है।

में इन कणों से अत्यन्त अधिक है।" तब बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया, "जिन लोगों की रक्षा की गई है उनकी संख्य। मेरे नख पर के कणों के बराबर है, और जो अब तक सन्मार्ग पर नहीं लाये गये हैं उनकी संख्या पृथ्वी के कणों के तुल्य है, तो भी तीन मास के उपरान्त मैं शरीर त्याग करूँगा।" मार इसको सुनकर प्रसन्न हो गया और चला गया।

इसी समय आनन्द ने जङ्गल में बैठे हुए अकस्मात एक अद्भुत स्वप्न देखा और बुद्ध भगबान् के निकट आकर उसका वृत्तान्त इस प्रकार निवेदन किया—"मैं जङ्गल में बैठा ध्यान कर रहा था कि मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा। मैंने देखा कि एक बड़ा भारी वृक्ष है जिसकी डालें और पत्तियां बहुत दूर तक फैली हुई हैं. और खूब सघन छाया कर रही हैं। अकस्मात् एक बड़ी भारी आंधी आई और वह वृक्ष पत्तियों और डालियों समेत ऐसा उखड़ गया कि उसका चिह्न भी उस स्थान पर न रह गया। शोक! मुझको मालूम होता है कि भगवान् अब शरीर त्याग करनेवाले हैं। मेरा चित्त शोक से विकल हो रहा है। इसलिए मैं आपसे पूछने आया हूँ कि क्या यह सत्य है? क्या ऐसा होनेवाला है?"

बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया, "आनन्द! मैंने तुमसे पहले ही प्रश्न किया था परन्तु तुम 'मार' के ऐसे वशीभूत हो रहे थे कि तुमने कुछ उत्तर ही नहीं दिया। मेरे संसार में वर्तमान रहने की प्रार्थना तुमको उसी समय करनी चाहिए थी। 'मार राजा' ने मुझ पर बहुत दबाब डाला और मैंने उसको बचन दे दिया, तथा समय भी निश्चित कर दिया, इसी सबब से तुमको ऐसा स्वप्न हुआ"

इस स्थान के निकट एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर हज़ार पुत्रों ने अपने माता-पिता के दर्शन किये था। प्राचीन काल में एक बहुत बड़ा

ऋषि था जो घाटियों और गुफाओं में अकेला निवास किया करता था, केवल वसन्त ऋतु के दूसरे मास में वह शुद्ध जलधार में स्नान करने के लिए बाहर आता था। एक दिन वह स्नान कर रहा था कि एक मृगी जल पीने के लिए आई। वह मृगी उसी समय गर्भवती हो गई जिससे एक कन्या का जन्म हुआ। इस बालिका की सुन्दरता ऐसी अनुपम थी कि जिसका जोड़ मानव-समाज में नहीं मिल सकता था; परन्तु इसके पैर मृग के से थे। ऋषि ने उस बालिका को ले लिया और अपने स्थान पर लाकर उसका पालन किया। एक दिन जब वह कन्या सयानी होगई, उस ऋषि ने उससे कहा कि कहीं से थोड़ी अग्नि ले आ। वह बालिका इस काम के लिए किसी दूसरे ऋषि के स्थान पर गई परन्तु जहां जहां उसका पैर पड़ा वहां वहां भूमि में कमल पुष्प का चित्र अंकित हो गया। दूसरा ऋषि इस तमाशे को देखकर हैरान हो गया। उसने उस कन्या से कहा, मेरी कुटी के चारों ओर तू प्रदक्षिणा कर, तब मैं तुझको अग्नि दूँगा।" वह कन्या उसकी आज्ञा का पालन करके और अग्नि लेकर अपने स्थान को लौट गई। उसी समय ब्रह्मदत्त राजा शिकार के लिए आया हुआ था। उसने भूमि में कमल के चित्र देख कर इस बात की खोज की कि ये चित्र क्योंकर बन गये। उन चिह्नों को देखता हुआ वह उस स्थान पर पहुँचा जहां वह कन्या थी। कन्या की सुन्दरता को देखकर राजा भौचक होकर मन और प्राण से उस पर मोहित हो गया और येन केन प्रकारेण उसको अपने रथ में बैठा कर चल दिया। ज्योतिषियों ने उसके भाग्य का भविष्य इस प्रकार बतलाया कि इसके एक हज़ार पुत्र उत्पन्न होंगे। राजा तो इस समाचार से बहुत प्रसन्न होगया परन्तु उसकी अन्य रानियां उससे जलने लगीं। कुछ दिनों बाद उसके गर्भ से कमल का एक पुष्प उत्पन्न हुआ जिसमें हजार पँखुड़ियां थीं, और प्रत्येक

पँखुड़ी पर एक बालक बैठा हुआ था। दूसरी रानियों ने इस बात पर उसकी बड़ी निन्दा की और यह कह कर कि "यह अनिष्ट घटना है" उस फूल को गंगा जी में फेंक दिया, वह भी धार के साथ बह गया।

उजियन का राजा एक दिन शिकार के लिए जा रहा था। नदी के किनारे पहुँच कर उसने देखा कि एक सन्दूक पीले बादल से लपटा हुआ उसकी ओर बहता चला आ रहा है। राजा ने उसको पकड़ लिया और खोल कर देखा तो उसमें हजार लड़के मिले। राजा उनको अपने घर लाया और बड़े चाव से उनका पालन-पोषण करने लगा। थोड़े दिनों में वे सब सयाने होकर बड़े बलवान् हुए। इन लोगों की वीरता के बल से वह अपना राज्य चारों ओर बढ़ाने लगा, तथा अपनी सेना के सहारे उसको इतना बड़ा साहस होगया कि वह इस देश (वैशाली) को भी जीतने के लिए उद्यत होगया। ब्रह्मदत्त राजा इसको सुनकर बहुत भयभीत हुआ। उसको यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि उसकी सेना चढ़ाई करनेवाले राजा का सामना कदापि नहीं कर सकेगी। इस कारण उसको बड़ी चिन्ता होगई कि क्या उपाय करना चाहिए। परन्तु मृग-पद बालिका अपने चित्त में जान गई कि ये लोग उसके पुत्र हैं। उसने जाकर राजा से कहा कि "जवान लड़ाके सीमा पर आ पहुँचना चाहते हैं परन्तु आपके यहां के सब छोटे बड़े लोग साहसहीन हो रहे हैं, यदि आज्ञा हो तो आपकी दासी कुछ कर दिखावे, वह इन आगन्तुक वीरों को जीत सकती है।" राजा को उसकी बात पर विश्वास न हुआ और उसकी घबड़ाहट ज्यों की त्यों बनी रही। मृग-कन्या वहां से चलकर नगर की सीमा पर पहुँची और चहारदीवारी के ऊपर चढ़ कर चढ़ाई करनेवाले वीरों का रास्ता देखने लगी। हजारों वीर अपनी सेना समेत आगये और नगर को घेरने लगे। उस समय मृग-कन्या

ने उनको सम्बोधन करके कहा, "विद्रोही मत बनो ! मैं तुम्हारी माता हूँ, और तुम मेरे पुत्र हो।" उन लोगों ने उत्तर दिया, "इस बात का क्या प्रमाण है?" मृग-कन्या ने उसी समय अपने स्तन को दबा कर हजार धाराएँ प्रकट कर दीं और वे धाराएँ, उसके दैवी बल से, उन लोगों के मुख में प्रवेश कर गईं।

इस बात को देखकर वे प्रसन्न हो गये और युद्ध को बन्द करके अपने कुटुम्बियों और सजातियों में जाकर मिल गये। दोनों राज्यों में प्रेम हो गया तथा प्रजा आनन्दित होगई।

इस स्थान के निकट एक स्तूप उस स्थान पर है जहां बुद्ध भगवान् ने टहल-टहल कर भूमि में चिह्न बनाया, और उपदेश देते समय लोगों को सूचित किया कि "प्राचीन काल में इसी स्थान पर मैं अपनी माता को देख अपने परिवारवालों से जा मिला था। तुमको मालूम होगा कि वे हजार वीर ही इस भद्रकल्प के हजार बुद्ध हैं।" बुद्ध भगवान् ने जिस स्थान पर अपना यह 'जातक' वर्णन किया था उसके पूर्व की ओर एक डीह पर एक स्तूप बना हुआ है। इसमें से समय समय पर प्रकाश निकला करता है तथा जो लोग प्रार्थना करते हैं उनकी मनोकामना पूर्ण होती है। उस उपदेश-भवन के भग्नावशेष अब तक वर्तमान हैं जहां पर बुद्ध भगवान् ने समन्त मुख धारणी[1] तथा अन्यान्य सूत्रों का प्रकाशन किया था।

इस उपदेश-भवन के पास ही थोड़ी दूर पर एक स्तूप है जिसमें आनन्द का आधा शरीर रक्खा हुआ है।

---

१ यह ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' का एक भाग है। परन्तु इस ग्रन्थ की प्राचीनता उतनी अधिक नहीं मालूम होती जितना अधिक पुराना बुद्धदेव का समय निश्चित किया जाता है। सैमुअल बील साहब की यही राय है।

इसके निकट ही और भी अनेक स्तूप हैं जिनकी ठीक संख्या निश्चित नहीं हो सकी। यहां पर एक हजार प्रत्येक बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैशाली नगर के भीतरी भाग में तथा उसके बाहर चारों ओर इतने अधिक पुनीत स्थान हैं कि उनकी गिनती करना कठिन है। परन्तु अब सबकी हालत खराब है, यहां तक की जङ्गल भी काट डाले गये और झीलें भी जलहीन हो गईं। किसी वस्तु का ठीक-ठीक पता नहीं लगता; केवल डीह और टीले वर्तमान हैं, जो हजारों वर्षों से नष्ट होते होते और प्राकृतिक फेरफार सहते-सहते इस दशा को प्राप्त हुए हैं।

मुख्य नगर से पश्चिम-उत्तर की ओर लगभग ५० या ६० ली चलकर हम एक स्तूप के निकट पहुँचे। यह विशाल स्तूप उस स्थान पर है जहां पर लिच्छवि लोग बुद्धदेव से अलग हुए थे। तथागत भगवान् जब वैशाली से कुशीनगर को जाते थे, तब लिच्छवि लोग यह सुनकर कि बुद्धदेव अब शरीर त्याग करेंगे रोते और चिल्लाते हुए उनके पीछे उठ दौड़े। बुद्ध भगवान् ने उनके प्रेम को विचार कर, कि शाब्दिक आश्वासन से ये लोग शान्त नहीं होंगे, अपने आध्यात्मिक बल से एक गहरी और बड़ी भारी नदी, जिसके किनारे बहुत ऊँचे थे, मार्ग में प्रकट कर दी। लिच्छवि लोगों को इस तीव्र गामिनी धारा को पार करना कठिन होगया। वे लोग इस आकस्मिक घटना से ठहर तो गये परन्तु उनका दुख और भी अधिक बढ़ गया। इस समय बुद्ध भगवान् ने उनको धीरज बँधाने के लिए स्मारक-स्वरूप अपना पात्र वहीं पर छोड़ दिया।

वैशाली नगर से उत्तर-पश्चिम दो सौ ली या इससे कुछ कम दूरी पर एक प्राचीन नगर है जो आज-कल प्रायः उजाड़ हो रहा है। बहुत थोड़े लोग इसमें निवास करते हैं। इस नगर के भीतर एक स्तूप उस स्थान पर

है जहां पर किसी अत्यन्त प्राचीन समय में बुद्ध भगवान् निवास करते थे। इसका वृत्तान्त जातक बुद्धदेव ने मनुष्यों, देवताओं और बोधिसत्वों को इस प्रकार सुनाया था। उन्होंने कहा था कि "मैं पूर्वकाल में इस नगर का राजा था। मेरा नाम महादेव था तथा सम्पूर्ण संसार पर मेरा आधिपत्य था। अपनी घटती के चिह्न[1] देखकर और यह विचार कर कि शरीर का कोई ठिकाना नहीं है मुझे वैराग्य होगया, जिस सबब से कि राज्य और सिंहासन को परित्याग करके और संन्यासी होकर मैं तपस्या करने लगा था।'

नगर से दक्षिण-पूर्व १४ या १५ ली चलकर हम एक बड़े स्तूप के निकट पहुँचे। यह वह स्थान है जहां पर सात सौ साधुओं और विद्वानों की सभा[2] हुई थी। बुद्ध निर्वाण के ११० वर्ष पश्चात् वैशाली के भिक्षुओं ने शिष्य-धर्म के नियमों को तोड़ कर बुद्ध-सिद्धान्तों को बिगाड़ डाला था। उस समय 'यशद आयुष्मत' कोशल देश में, सम्भोग आयुष्मत मथुरा में रेवत आयुष्मत हान जो (कन्नौज ?) में, शाल आयुष्मत वैशाली में और पूजा सुमिर आयुष्मत शालोलीफो (सलीरभू ?) देश में, निवास करते थे। ये सब विद्वान् अर्हत एक से एक बढ़ कर तीनों विद्याओं के जाननेवाले और त्रिपिटक के भक्त थे तथा जो कुछ जानना चाहिए उसको आनन्द की शिष्यता में जानकर बहुत प्रसिद्ध हुए थे।

वैशालीवालों की धृष्टता पर खिन्न होकर यशद ने सब विद्वान और महात्माओं को वैशाली में सभा करने के सिए बुला भेजा। सब लोग आकर एकत्रित हो गये परन्तु सात सौ की संख्या पूर्ण होने में फिर भी एक

---

१ सबसे प्रथम घटती के चिह्न सिर में सफेद बाल दिखाई पड़े थे, जिनको देखकर महादेव ने पुत्र को राज्य देकर वन का रास्ता लिया था।

२ इस सभा का नाम 'द्वितीय बौद्ध-सभा' है।

व्यक्ति की कमी रह गई। उसी समय, फुसी सुमीलो (पूजासुमिर) ने अपने अन्त:चक्षु से यह विचार कर कि सब महात्मा लोग सभा में आ चुके हैं और पुनीत धर्म के कार्य को सम्पादन करना चाहते हैं, अपने आध्यात्मिक प्रभाव से सभा में पहुँच कर उस कमी को पूरा कर दिया।

तब सम्भोग आयुष्मत सब को दण्डवत् करके और अपनी दाहिनी छाती खोल कर सभा के बीच में खड़ा हो गया। उसने चिल्ला कर कहा, "सब सभासद् चुप हो जायँ और भक्तिपूर्वक मेरी बातों पर विचार करें। हमारे धर्मेश्वर बुद्ध भगवान् हमलोगों की सब प्रकार रक्षा करके निर्वाण को प्राप्त हो गये। यद्यपि उस समय से लेकर अब तक अनेक वर्ष और मास व्यतीत हो गये हैं परन्तु तो भी उनके शब्द और उपदेश अब तक जीवित हैं। अब आज-कल वैशाली के भिक्षु लोग उनकी आज्ञा को बिगाड़ रहे हैं और धार्मिक नियमों में भूल कर रहे हैं। सब मिलाकर दस विषय हैं, जिनमें उन लोगों ने बुद्धदेव के बचनों का उल्लङ्घन किया है। हे विद्वान् महात्माओ! आप उन भूलों को अच्छी तरह जानते हैं और उस धुरंधर विद्वान् आनन्द की शिक्षा से भी भली भांति अभिज्ञ हैं। इसलिए हम सबका धर्म है कि बुद्धदेव की भक्ति करते हुए उनके पवित्र आदेशों का फिर से निरूपण करें।"

सम्पूर्ण सभासद् इस बात को सुनकर दुखित हो गये। उन लोगों ने वैशालीवालों को बुला भेजा और 'विनय' के अनुसार उन पर धर्मोल्लङ्घन का दोष लगा कर और उनके बिगाड़े हुए नियमों को दूर करके पवित्र धर्म के नियमों को नवोन रूप से स्थापित किया।

इस स्थान से ८० या ९० ली दक्षिण दिशा में जाकर हम श्वेतपुर नामक संघाराम में पहुँचे। इसकी दुमञ्जिली इमारत पर गोल गोल ऊँचे

ऊँचे शिखर आकाश से बातें करते हैं। यहां के साधु शान्त और आदरणीय हैं, तथा महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। इसके पार्श्व में चारों गत बुद्धों के उठने बैठने आदि के चिह्न बने हुए है।

इन चिह्नों के निकट एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ उस स्थान पर है जहां प. बुद्धदेव ने दक्षिण दिशा में मगधदेश को जाते हुए, उत्तरमुख खड़े होकर वैशाली नगरी को नजर भर कर देखा था, और सड़क पर, जहां से खड़े होकर उन्होंने देखा था, इस दृश्य के चिह्न हो गये थे।

श्वेतपुर संघाराम के दक्षिण-पूर्व में लगभग ३० ली की दूरी पर गंगा के दोनों किनारों पर एक एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहां पर महात्मा आनन्द का शरीर दो राज्यों में विभक्त हुआ था। आनन्द तथागत भगवान के बंश का था। वह उनके चचा का पुत्र * था। वह बहुत योग्य शिष्य, सब सिद्धान्तों का जाननेवाला तथा प्रतिभासम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति था। बुद्ध भगवान् के वियोग होने पर महाकाश्यप का स्थानापन्न और धर्म का रक्षक भी वही बनाया गया था। तथा वही व्यक्ति मनुष्यों का सुधारक और धर्मोपदेशक नियत किया गया था। उसका निवास-स्थान मगधदेश के किसी जङ्गल में था। एक दिन इधर-उधर घूमते हुए उसने क्या देखा कि श्रमण एक सूत्र का ऊटपटांग पाठ कर रहा है जिससे कि सूत्र के अनेक शब्द और वाक्य अशुद्ध हो गये हैं। आनन्द उस सूत्र को सुनकर दुखी हुआ। वह बड़े प्रेम से उस श्रमण के पास गया, और उसकी भूल दिखा कर उसने उसे बतलाया कि इसका ठीक ठीक पाठ इस प्रकार है! श्रमण ने हँस कर उत्तर दिया, "महाशय! आप वृद्ध हैं, आपका शब्दोच्चारण अशुद्ध है। मेरा गुरु बड़ा विद्वान है, उसने वर्षों परिश्रम करके अपनी विद्वत्ता को परिपुष्ट

---

* आनन्द राजा शुक्लोदन का पुत्र था।

किया है तथा मैंने स्वयं जाकर उससे ठीक ठीक उच्चारण और पाठ सीखा है, इससे मेरे पाठ में भूल नहीं है।" आनन्द वहां से चुप होकर चला गया परन्तु उसको बड़ा शोक हुआ। उसने कहा "यद्यपि मेरी बहुत अवस्था हो चुकी है तो भी मनुष्यों की भलाई के लिए मेरी इच्छा थी कि और अधिक दिन संसार में रहकर सत्य-धर्म की रक्षा करूँ और लोगों को धर्माचरण सिखलाऊँ, परन्तु अब मनुष्य पापी हो चले हैं; इनको सिखला कर सन्मार्ग पर लाना कठिन है। इसलिए अब अधिक दिन ठहरना बेफायदा ही होगा।" यह विचार कर वह मगधदेश को परित्याग करके वैशाली नगर की ओर रवाना हुआ। जिस समय वह नाव में बैठ कर गंगा नदी उतर रहा था उसी समय मगधनरेश, यह सुन कर कि आनन्द अब संसार परित्याग करेंगे, बहुत दुखित होकर और झटपट रथ पर सवार होकर सेना-समेत गंगा नदी के दक्षिणी तट पर पहुँच गया और दूसरी तरफ से वैशाली-नरेश भी आनन्द का आना सुनकर बड़े शोक के साथ द्रुतगति से उससे मिलने के लिए उठ दौड़ा। उसकी भी अगणित सेना गंगा के दूसरे किनारे (उत्तरी किनारे) पर पहुँच गई। दोनों सेनाओं का मुक़ाबिला हो गया तथा दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र और ध्वजा-पताका धूप में चमकने लगीं। आनन्द, यह भय खाकर कि दोनों सेनायें लड़ मरेंगीं और व्यर्थ को बड़ा भारी संग्राम हो जायगा, अपने शरीर को नाव में से उठा कर अधर में जा पहुँचा, और वहां पर अपने अद्‌भुत चमत्कार को दिखा के निर्वाण को प्राप्त हो गया। लोगों ने देखा कि अधर में लटका हुआ आनन्द का शरीर भस्म हो गया और उसकी हड्डियां दो भाग होकर भूमि पर गिर पड़ीं, अर्थात् एक भाग नदी के दक्षिणी किनारे पर और दूसरा भाग उत्तरी किनारे पर। दोनों राजा अपना अपना भाग उठाकर अपनी अपनी सेना के समेत आनन्द के शोक में रोते हुए लौट गये, और अपने अपने स्थान में जाकर उन्होंने ने उन भागों पर स्तूप बनवाये।

['हुएनसांग का भारत-भ्रमण' नामक पुस्तक से उद्‌धृत]

वैशाली के भग्नावशेष

[ले०—प्रो० योगेन्द्र मिश्र, एम० ए०, साहित्यरत्न]

अत्यन्त विशाल होने के कारण तथा राजा विशाल द्वारा बसाये जाने के कारण इस नगरी का नाम विशाला पड़ा, जो पीछे चल कर वैशाली हो गया। अतः, जैसा कि श्रीराहुल सांकृत्यायन ने लिखा है, वैशाली के ध्वंसावशेष का दूर तक होना स्वाभाविक है। अभी भी कोसों तक पुरानी बस्तियों के निशान मिलते हैं।

आजकल बसाढ़, चकरामदास और बनिया एवं कोल्हुआ में निम्न-लिखित भग्नावशेष मिलते हैं जो नीचे दिये जाते हैं:—

(क) बसाढ़

(१) राजा विशाल का गढ़

ऐसा विश्वास किया जाता है कि आजकल जो स्थान 'राजा विशाल का गढ़' के नाम से प्रसिद्ध है वह प्राचीन समय में लिच्छवियों की राजधानी रहा होगा। यह आयताकार, ईंटों से भरा, ऊँचा स्थान है। इसकी परिधि करीब एक मील है। उत्तर से दक्षिण यह करीब १७०० फीट लम्बा है और पूर्व से पश्चिम करीब ८०० फीट चौड़ा है। जनरल कनिंगहम लिखते हैं कि यह १५८० फीट लम्बा और ७५० फीट चौड़ा है। आसपास के खेतों से खण्डहरों की औसत ऊँचाई करीब ८ फीट है। इसके चारो ओर पहले गहरी खाई थी। अब यह खाई धीरे धीरे भर रही है और इसमें खेती होने लगी है। जनरल कनिंगहम ने इस खाई की चौड़ाई

२०० फीट लिखी है, मगर आज कल इसकी चौड़ाई १२५ फीट से अधिक नहीं होगी। गढ़ के दक्षिणी भाग में खाई पर बांध जैसा मालूम पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गढ़ तक आने वाली यह कोई सड़क रही होगी। गढ़ की दीवालों का पता लगाने के विचार से १८८१ ई० में जनरल कनिंगहम ने यहां खुदाई का कुछ काम किया था, मगर किसी दीवाल का पता नहीं चला।

इस गढ़ पर दो बार—१६०३-४ और १६१३-१४ में—डा० ब्लॉश और डा० स्पूनर द्वारा खुदाई का काम हुआ है। मुख्यतः मुहरें एवं मिट्टी के बने पदार्थ मिले हैं जो इण्डियन म्यूजियम (कलकत्ता) और पटना म्यूजियम में रखे हैं।

(२) वेङ्कटेश्वर मन्दिर

उपर्युक्त गढ़ के दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक आधुनिक युग का मन्दिर बना हुआ है, जिसे वेंकटेश्वर मन्दिर कहते हैं। इसमें राम, सीता, लक्ष्मण परशुराम, सूर्य और लक्ष्मी की पीतल की मूर्तियाँ हैं। बारह छोटे शालिग्राम भी हैं। सभी आधुनिक युग के हैं। मिस्टर एच० बी० डब्ल्यू० गैरिक ने जब इस मन्दिर को देखा था (१८८०-८१ ई०), तब इसमें केवल धातु की तीन मूर्तियां थीं, जिन में बिचली दो फीट और बगल वाली १४ इंच ऊँची थीं। मिस्टर गैरिक ने इन तीनों के चित्र भी लिये थे।

(३) ध्वस्त स्तूप पर शाह काजिन की दरगाह

गढ़ के करीब ३०० गज दक्षिण-पश्चिम एक बौद्धकालीन स्तूप है। यह ईंटों का बना है और आसपास के खेतों से २३ फीट ८ इंच ऊँचा है। धरती पर इसका व्यास १४० फीट होगा। दक्षिण ओर से ऊपर जाने के लिये सीढ़ी है। समीप ही बड़ का एक वृक्ष खड़ा है। पूरी ईंट तो

नहीं मिलती, किन्तु सीढ़ी में लगी ईंट पौने तीन इंच मोटी है और करीब नौ इंच चौड़ी है।

स्तूप का ऊपरी भाग चौरस बना डाला गया है, जिस पर प्रसिद्ध फकीर शेख मुहम्मद काजिन की दरगाह है। सन् ११८० ई० में इमाम मुहम्मद फकीह ने मक्के से आकर पटना जिले में अवस्थित मनेर को वहां के हिन्दू सरदार से जीता था। इनके तीन लड़के थे, जिनमें मँझले इस्माइल थे। इनने गंगा के उत्तर इस्लाम के प्रचार में अपना जीवन लगाया। बनिया बसाढ़ के शेख काजिन इन्हीं के वंशज थे। काजिन साहब का जन्म मनेर में १४३४ ई० में हुआ था और इनका देहान्त १४६५ में हुआ था। आपने पैदल मराडू (मध्य भारत) की यात्रा की थी और वहां शेख अब्दुल्ला शुत्तारी के शिष्य हुए थे। आपके कई लड़के थे। सब से बड़ा मखदूम शेख उवैस हिन्दुओं द्वारा बसाढ़ में एक मसजिद खड़ा करने का प्रयत्न करने के कारण मारा गया। एक दूसरे लड़के अबुल फतह की कब्र गंडक के किनारे हाजीपुर के समीप तँगौल में है। जन्दाहा (हाजीपुर सब डिवि-जन) के दीवान शाह अली शेख काजिन के पोते थे। वस्तुतः हाजीपुर सब-डिविजन में इस्लाम के प्रचार का श्रेय इन्हीं कतिपय मुसलमान सन्तों को है। फलस्वरूप अभी भी, जैसा कि जनवरी १८६१ के 'कलकत्ता रिव्यू' में मिस्टर जौन क्रिस्चियन ने लिखा है, हाजीपुर सबडिविजन के करीब ६५ प्रतिशत गांवों के नाम मुसलमानी उद्गम के हैं।

शेख काजिन की दरगाह पर चैत रामनवमी को प्रतिवर्ष मेला लगा करता है। इस अवसर पर यहां हजारों आदमी इकट्ठे होते हैं और कब्र पर मलीदा आदि चढ़ाया जाता है। चूँकि यह मेला हिन्दुओं की सौरगणना के अनुसार लगता है, इसलिये जनरल कनिंगहम का विचार था कि यह

मेला मुसलिम सन्त के बहुत पहले से लगता रहा होगा। यह युक्तिसंगत जँचता है। किन्तु उनका यह विचार कि ध्वस्त स्तूप के समीप लगने के कारण यह मेला अवश्य ही बुद्ध अथवा उनके किसी शिष्य के सम्मान में लगता होगा बहुत तर्क संगत नहीं मालूम पड़ता। हमारे देश के इस भाग में बहुधा मेले चैत सुदी नवमी अथवा अगहन सुदी पंचमी को लगते हैं। ये तिथियां राम के जन्म और विवाह की तिथियां हैं। तिरहुत में वैष्णव-धर्म की बहुत प्रधानता रही है और ऐसा मालूम पड़ता है कि इस प्रकार के मेले को काजिन साहब ने, जो मुसलिम धर्म का प्रचार करना चाहते थे, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये अत्यन्त उपयुक्त समझा तथा प्रति वर्ष इस अवसर पर स्वधर्मप्रचार करते रहे। इस बात से कि उनके वास-स्थान और कब्रगाह पर प्रतिवर्ष मेला लगता रहा है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि जनता में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इस स्तूप की चर्चा चीनियों ने नहीं की है। जनरल कनिंगहम के यहां आने (१८६१ई०) के पहले इस स्तूप के किनारे के समीप खोदने पर दो सुन्दर काम किये हुए मध्य युग के प्रस्तर-स्तम्भ मिले थे।

यह दरगाह 'मीरानजी की दरगाह' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें ८ बीघा जमीन दी हुई है।

कब्रगाह के पूर्व एक छोटी मसजिद के खण्डहर हैं। मौलवी मुहम्मद हमीद कुरेशी, बी० ए० का अनुमान है कि सम्भवत: यह वही मसजिद है जिसके बनवाने का प्रयत्न करते हुए शेख काजिन के ज्येष्ठ पुत्र मखदूम शेख उवैस हिन्दुओं द्वारा मारे गये थे।

(४) बावन पोखर के उत्तरी भीटे पर का मन्दिर

गढ़ से पश्चिम तरफ बावन पोखर के उत्तरी भीटे पर एक छोटा सा

[बावन

१५ पुरना—उत्तर तरफ, गया गोखर के समीप ।

१६ दखिनी—गंगा सागर के समीप ।

बहुत से चौड़े जलाशय, जो 'चौर' के नाम से प्रसिद्ध हैं, कहीं कहीं गहरे हो गये हैं और वहां उनके अलग नाम पड़ गये हैं। गढ़ के पश्चिम जो बड़ा जलाशय है उसका नाम 'चौर' है। जहां जहां यह अधिक गहरा हो गया है, वहां इसके भिन्न भिन्न नाम—यथा बावन, चौघरडा, चौर और दखिनी—पड़े हैं।

किंवदन्ती है कि यहां कभी ५२ पोखर थे, बसाढ़ में राजा बलि का वासस्थान था और यहां विष्णु का वामन अवतार हुआ था, जिसके स्मारक बावन पोखर हैं। जनरल कनिंगहम का यह विचार ठीक मालूम पड़ता है कि बौद्ध स्थानों में जलाशयों की अधिकता रहती थी।

वैशाली के राजाओं के राज्याभिषेक के लिये इन पोखरों का जल काम में लाया जाता रहा होगा।

(६) विविध

डा० टी० ब्लॉश ने लिखा है कि आधुनिक बसाढ़ गांव के अन्दर ईंटों के बने अनेक पुराने मकानों के अवशेष हैं, जिनपर नये घर बने हैं। बावन पोखर के पश्चिम, घोगा पोखर और चतरा इन दो लम्बे जलाशयों के बीच, एक पुराना बांध है। खरौना पोखर के किनारों पर बहुत सी टूटी-फूटी ईंटें मिलती हैं, जिससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि वहां मकानों के भग्नावशेष होंगे।

(ख) बनिया और चकरामदास

बसाढ़ गढ़ से करीब एक मील उत्तर-पश्चिम बनिया नामक गांव है। यह बड़ा गांव है और इसका दक्षिणी भाग चकरामदास कहलाता है। श्री

[चौअन

एच० बी० डब्ल्यू० गैरिक, जो १८८०-८१ ई० में भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सहायक (असिस्टेण्ट) थे, इस गांव (चकरामदास) में गये हुए थे और उनने वहां की दो प्रस्तर मूर्तियों का जिक्र किया है; किन्तु डा० ब्लॉश ने १९०३-४ में जब इन मूर्तियों की खोज की तब उन्हें पता चला कि करीब दस वर्ष पहले ही दोनों मूर्तियां वहां से हटा ली गई थीं। ये मूर्तियां २'२"×१४"×३" और १'१०"×१'×३" थीं। श्री गैरिक इनका चित्र न ले सके थे। अत: अब सदा के लिये इन्हें गया हुआ ही समझना चाहिये।

(१) चकरामदास म्यूजियम

जो लोग राजा विशाल का गढ़ देखने बसाढ़ जाते हों, उन्हें चकरामदास जाकर वहां का म्यूजियम अवश्य देखना चाहिये, नहीं तो उनकी वैशाली यात्रा अधूरी रह जायगी। सर्वश्री दीप नारायण सिंह, एम. एल. ए, जगन्नाथ प्रसाद साह और बिजुली सिंह आदि के सदुद्योग से १९४१ ई० में इसकी स्थापना हुई थी। इधर उधर से जो चीजें मिल गयी हैं, वे सभी यहां रखी गई हैं। कई मिट्टी के पदार्थ हैं, मूर्तियां हैं, सिक्के भी हैं। मिट्टी का ही बना दीवट (दीपाधानी) भी है। गले में पहनने की भी कई चीजें मिली हैं।

श्री एन० सेनापति आई. सी. एस. जब मुजफ्फरपुर के कलक्टर थे, तब वहां गये थे और इसका निरीक्षण कर बहुत प्रसन्न हुए थे। इन पंक्तियों के लेखक ने २८ जनवरी १९४५ को हाजीपुर के विद्या प्रेमी एस० डी० ओ० श्री जगदीश चन्द्र माथुर, आई, सी. एस. एवं बिहार के प्रसिद्ध कलाकार श्री उपेन्द्र महारथी के साथ इस स्थान की यात्रा की थी और यहां के पदार्थों को देखा था।

इस म्यूजियम को वैज्ञानिक ढंग पर चलाने की आवश्यकता है। इसका

कटलाग (पदार्थ-सूची) किसी विशेषज्ञ से तैयार कराया जाय और यहां उपलब्ध प्राचीन चिह्नों का अध्ययन करा कर उन पर लेख लिखवाया जाय, इसकी बड़ी जरूरत है। मैं इस ओर पटना विश्वविद्यालय के वर्तमान संस्कृति-अनुरागी वाइसचांसलर बाबू चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह साहब का ध्यान आकर्षित करता हूँ।

(२) घोड़दौड़

इसकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है। यह गढ़ और चकरामदास के बीच स्थित है और पूर्व से पश्चिम ओर गया हैं। इस पोखर की लम्बाई करीब आध मील है। जनरल कनिंगहम का विचार है कि चूँकि यह पोखर बहुत लम्बा और सँकरा है और इसका आकार प्राचीन काल की घोड़-दौड़ की जगह से मिलता-जुलता है, अतः इसका यह नाम पड़ा होगा, क्योंकि इस नाम के सभी पोखरों का यही आकार है। श्री गैरिक महोदय का अनुमान है कि प्राचीन काल की एक प्रचलित प्रथा के कारण इस पोखर का यह नाम पड़ा होगा जिसके अनुसार एक निश्चत समय में एक घुड़सवार जितनी जमीन पार कर सकता था, उतनी जमीन में पोखर खुदवा दिया जाता था। पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित का विचार है कि यह स्थान लिच्छवियों का अस्तबल रहा होगा।

(३) बनिया गाछी में एक छोटा सा देवस्थान है।

(४) विविध

चकरामदास के दक्षिण-पश्चिम कुछ ऊँचे स्थान हैं, जिन पर प्राचीन खण्डहर भी पाये जाते है।

(ग) कोल्हुआ

बसाढ़ के समीप दो भग्नावशेष ऐसे है जो प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन-

[च्वंग

[त्सांग

सांग के वैशाली के सम्बन्ध में दिये गये वर्णन से बिलकुल मिल जाते हैं। ये दो भग्नावशेष हैं---राजा विशाल का गढ़ और बसाढ़ से दो मील उत्तर-पश्चिम स्थित कोल्हुआ में अशोक का स्तम्भ, स्तूप और मर्कट-ह्रद नामक पोखर (आधुनिक नाम रामकुण्ड) जो तीनों आसपास ही हैं। वैशाली के राजप्रासाद की परिधि हुएन-सांग ने ४-५ ली लिखी है, जो गढ़ की ५००० फीट से कुछ कम की परिधि से बिलकुल मेल खा जाती है। चीनी यात्री लिखता है —"उत्तर-पश्चिम में अशोक द्वारा बनवाया हुआ एक स्तूप था और ५० या ६० फीट ऊँचा पत्थर का एक स्तम्भ था, जिसके शिखर पर सिंह अवस्थित था। स्तम्भ के दक्षिण एक पोखर था। जब बुद्ध इस स्थान पर रहते थे, तब उनके उपयोग के लिये यह खोदा गया था। पोखर से कुछ दूर पश्चिम एक दूसरा स्तूप था। यह उस स्थान पर बना था, जहां बन्दरों ने बुद्ध को मधु अर्पित किया था। पोखर के उत्तर-पश्चिम कोने पर बन्दर की एक मूर्ति थी।" कोल्हुआ में अभी भी स्तम्भ है जिसके शिखर पर सिंह है, इसके उत्तर अशोक द्वारा निर्मित ईंटों का एक स्तूप है, दक्षिण ओर एक पुराना पोखर है, आजकल इसका नाम रामकुण्ड है। यह रामकुण्ड बुद्ध के इतिहास में प्रसिद्ध मर्कट-ह्रद है। पोखर के दक्षिण बहुतसी टूटी-फूटी ईंटें पड़ी हैं जो अवश्य ही हुएन-सांग द्वारा वर्णित छोटे स्तूपों के खण्डहर हैं। हुएन-सांग के वर्णन और वर्तमान अवशेष में केवल स्तम्भ की ऊँचाई में अन्तर मिलता है। जलतल से स्तम्भ ४५ फीट से कुछ अधिक ऊँचा है। इस अन्तर का कारण यह है कि स्तम्भ बालू में कई फीट नीचे धँस गया है।

अब हम कोल्हुआ के वर्तमान ऐतिहासिक भग्नावशेषों का अलग अलग वर्णन करेंगे।

(१) अशोक का स्तम्भ

यह 'भीमसेन की लाट' के नाम से प्रसिद्ध है और जमीन से २१ फीट ६ इञ्च ऊँचा है, किन्तु इसका बहुत बड़ा भाग जमीन में धँस गया है। जनरल कनिंगहम ने १४ फीट नीचे तक इसकी खुदाई करायी थी और तब भी इसे उतना ही चिकना पाया था, जितना ऊपर है।

स्तम्भ का ऊपरी भाग २ फीट १०इंच ऊँचा है और घण्टी के आकार का है। इसके ऊपर प्रस्तरखण्ड है, जिस पर सिंह उत्तर मुँह करके बैठा है। यह साढ़े चार फीट ऊँचा है इस प्रकार सम्पूर्ण लाट की ऊँचाई वहां के धरातल से ३० फीट से भी अधिक है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि अशोक ने अपने राजत्वकाल के २१ वें वर्ष में बौद्ध स्थानों के दर्शनार्थ नेपाल की यात्रा की थी, उसी समय इसे बनवाया था; क्योंकि यह पाटलिपुत्र और लुम्बिनी के रास्ते पर पड़ता है।

स्तम्भ पर कोई लेख नहीं है, मगर करीब १५ फीट की ऊँचाई तक लोगों ने अपने नाम लिख कर इसकी शोभा को बिगाड़ डाला है। नाम अंगरेजी या नागरी अक्षरों में हैं। कोई भी नाम दो या तीन सौ वर्षों से पुराना नहीं है। अंगरेजी में सब से पुराने नाम हैं—"जी० एच० बार्लो, १७८०" और "रिउबेन बरो १७६२"। इसमें रिउबेन बरो प्रसिद्ध गणितज्ञ और नक्षत्र-विद्या के आचार्य थे एवं बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पुराने मेम्बरों में थे।

प्राचीन स्तम्भों या चिह्नों पर अपना नाम खोदने की प्रवृत्ति प्रोत्साहन के योग्य नहीं है।

आज कल यह स्तम्भ बाबा नारायण दास बैरागी की ठाकुरबाड़ी के भीतर पड़ता है।

(२) स्तूप और उसके ऊपर का मन्दिर

स्तम्भ से करीब २० गज उत्तर बैरागी बाबा की ठाकुरबाड़ी के सामने एक ध्वस्त स्तूप है वास्तव में यह आनन्द का अर्धांग स्तूप है। यह १५ फीट ऊँचा है। धरती पर इसका व्यास ६५ फीट होगा। इसमें लगी ईंटें १२"×९$\frac{1}{2}$"×१$\frac{1}{2}$" हैं। मिस्टर स्टिफेन्सन, जिनने १८३५ ई० में इसका निरीक्षण किया था, लिखते हैं कि करीब ३० साल पहले (अर्थात् १८०५ के करीब) मुजफ्फरपुर के एक डाक्टर ने इस स्तूप के मध्य भाग को खुदवाया था, मगर इसमें से कुछ नहीं निकला। स्तूप के ऊपर पीपल का एक बड़ा वृक्ष था जो १८७९ ई० में गिर पड़ा। इस वृक्ष को १८६२ में कनिंगहम ने देखा था। स्तूप के ऊपर एक आधुनिक मन्दिर है, जिस पर पहुँचने के लिये पूर्व ओर से सीढ़ी बनी है। इसमें बोधि-वृक्ष के नीचे भूमिस्पर्शमुद्रा में बैठे बुद्ध की एक अच्छी विशाल मूर्त्ति है जो मुकुट, हार और कर्णाभूषण पहने है। मूर्त्ति पाल-युग की है। पाल-युग की इस प्रकार की मूर्त्तियां बिहार में, विशेष कर गया जिले में, बहुत मिलती हैं। कौआ-डोल में भी मैंने इसी प्रकार की मूर्ति देखी थी; जब मैं 'पटना कालेज पुरातत्व-इतिहास-परिषद्' के मन्त्री की हैसियत से वहां गया था। कोल्हुआ के इस मन्दिर की मूर्त्ति समीप के किसी खेत के खोदने पर १८५४ ई० में मिली थी। आसन-सहित मूर्त्ति चार फीट चार इंच लम्बी और २ फीट ५ इंच चौड़ी है। कनिंगहम साहब लिखते हैं कि यह कदे-आदम है, मगर कुरेशी इससे सहमत नहीं होते।

बुद्ध के सिर के दोनों ओर इसी प्रकार की बैठी मूर्त्तियां, मुकुट और आभूषण पहने हैं। उनके हाथ इस प्रकार हैं, मानो वे प्रार्थना कर रही हों। इन दोनों छोटी मूर्त्तियों में प्रत्येक के नीचे दो पंक्तियों का लेख है,

जिसमें बौद्धधर्म का सिद्धान्त वाक्य "धर्म हेतु ... ..." है।

प्रधान मूर्त्ति की वेदी के सामने नागरी लिपि में यह लेख है--

पहली पंक्ति--"... ... ... देयधर्म्मोयम् प्रवर-महायानयायिन: करणिकोच्छाह: (=उत्साहस्य) मा[णि]क्य-सुतस्य,

दूसरी पंक्ति--"यदत्र पुण्यम् तद्भवत्वाचार्यो-पाध्याय-मातापितोरात्मनश्च पूर्व्वंगमम कृ--

तीसरी पंक्ति--"त्वा सकल-स[त्]त्वराशेरनुत्तर-ज्ञानावाप्तयेति,"

अर्थात् "माणिक्य के पुत्र, लेखक और महायान के परम अनुयायी उत्साह का यह धर्मपूर्वक किया गया दान है। इससे जो भी पुण्य हो, वह आचार्य, उपाध्याय, मातापिता और अपने से लेकर समस्त प्राणिमात्र के अनन्त कल्याण की प्राप्ति के लिये हो।"

महायानमत के अनुयायी उत्साह ने जिस बुद्ध मूर्त्ति का दान किया था, उसे आजकल हमारे बैरागी बाबा अथवा उनके शिष्यों ने उर्ध्वपुण्ड से सुशोभित कर बिलकुल वैष्णव बना डाला है।

(३) रामकुण्ड (मर्कट-हृद)

स्तम्भ से सटे दक्षिण करीब ५० फीट की दूरी पर एक पोखर है, जो आजकल रामकुण्ड कहलाता है। ब्लॉश ने इसकी लम्बाई २०० फीट और चौड़ाई १०० फीट लिखी है। उनने इसके किनारों को ईंटों वाला लिखा है, किन्तु अब वहां केवल कीचड़ ही कीचड़ है, ईंटों का नाम-निशान तक नहीं है। हुएन-सांग के वर्णन को मिलाने से जनरल कनिंगहम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह बौद्ध इतिहास में प्रसिद्ध मर्कट-हृद है, जिसके किनारे कूटागारशाला थी। कूटागारशाला में ही भगवान् बुद्ध ने आनन्द को आगे आने वाले अपने निर्वाण की सूचना देकर अपने शिष्यों को उपदेश

दिया था। धरती पर तो किसी मकान के निशान नहीं मिलते, किन्तु कनिंगहम लिखते हैं कि पोखर के दक्षिण और पश्चिम उन्हें कई छोटे छोटे डीह के समान स्थान दीख पड़े जहाँ से ईंटें हटाई गयी मालूम पड़ती थीं। ऐसे चार स्थानों पर खुदाई की गई। तीन जगहों पर तो कुछ नहीं मिला, मगर पोखर के दक्षिण जहां खुदाई की गई, वहां मकान के निशान मिले। यहां पूर्व से पश्चिम जानेवाली एक मोटी दीवाल पायी गयी। यह अच्छी तरह पकी ईंटों की बनी थी। ईंटों की नाप १५ १/३"×६ १/२"×२" थी। इस दीवाल के मोटापन से मालूम पड़ता है कि यह अवश्य किसी बढ़े मकान का अंग रही होगी। जनरल कनिंगहम का अनुमान है कि सम्भवतः यह दीवार कूटागारशाला की ही होगी, क्योंकि यह शाला, जैसा कि हमलोगों को मालूम है, मर्कट-ह्रद के किनारे अवस्थित थी। दीवाल के पश्चिमी अन्त पर ईंट के एक छोटे स्तूप के अवशेष थे। इस स्तूप की अनेक काम की हुई ईंटें इधर-उधर पड़ी थीं। सवा सात इञ्च व्यास वाली एक गोलाकार ईंट थी जिसका ऊपरी भाग गोल था। इसके बीच में एक चौकोर छेद था। कनिंगहम के मतानुसार यह स्तूप के शिखर वाली ईंटों में से एक रही होगी। ईंटों की ढाल पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि स्तूप का व्यास ७ या ८ फीट से अधिक नहीं रहा होगा। हुएन-सांग लिखता है कि इसी स्थान पर (जहां यह छोटा स्तूप है) वह स्तूप था, जो बुद्ध को मर्कट द्वारा एक पात्र मधु अर्पित किये जाने के उपलक्ष में बना था। फिर भी कनिंगहम सोचते हैं कि यह छोटा स्तूप हुएन-सांग द्वारा वर्णित बन्दर के मधु-समर्पण वाले स्तूप से भिन्न है और किसी यात्री-विशेष द्वारा बनवाया गया रहा होगा। डा० ब्लॉश ने मर्कटह्रद का चित्र दिया है।

(४) भीमसेन का पल्ला

स्तम्भ से आध मील उत्तर-पश्चिम दो ऊँचे स्थान हैं जिन्हें लोग 'भीमसेन का पल्ला' या 'भीमसेन का भार' कहते हैं और स्तम्भ तो भीमसेन की लाट' है ही। किंवन्दती है कि भीमसेन लाठी पर उठा कर दो भार लिये जाते थे, जो उनने वहां गिरा दिये। एक उच्चस्थान पर एक बड़ का वृक्ष भी है। इन उच्चस्थानों में ईंटें बिलकुल नहीं हैं। कुछ लोगों का विचार है कि यह 'केवल मिट्टी का बना स्तूप' (पार्थिव स्तूप) है, किन्तु सभी इससे सहमत नहीं हैं।

ये उठे हुए स्थान एक बड़े तालाब के पूर्वी किनारे के एक कोने के समीप हैं, मगर इसके भिण्डे के अंग नहीं हैं। तालाब आधुनिक है, मगर ये उच्चस्थल पुराने हैं। कुछ लोग इन्हें 'राजा विशाल का मोर्चा' भी कहते हैं। ऊपरी दिखावट से ये लौरिया के उच्चस्थलों (mounds) से मिलते-जुलते हैं जो वस्तुत; स्तूप नहीं हैं। डा० ब्लॉश ने 'पल्ला' का चित्र अपनी रिपोर्ट (१९०३-४) में पृष्ठ ८६ पर दिया है।

(५) मरपसौना या मँरपसौनी

यह उच्चस्थल कोल्हुआ के उत्तर है और 'पल्ला' की अपेक्षा कम अर्ध-गोलाकार है और उससे कुछ नीचा भी है। सम्भवत: यह 'धनुर्बाण त्याग स्तूप' है। बखरा से जो सड़क सरैया को जाती है, उसीके पास एक झील में यह एक टीला है।

(६) न्योरी नाला

कोल्हुआ, बनिया और बसाढ़ के पश्चिम 'न्योरी नाला' नामक नदी का पुराना पाट बहुत दूर तक चला गया है। अब इसमें खेती होती है।

(७) विविध

अन्य कई स्थान भी हो सकते हैं, जहां खण्डहर पाये जाते हों।

कर्लाश ने लिखा है कि बसाढ़, बनिया और कोल्हुआ के धनी लोगों के घर पुरानी ईंटों से बने हैं और इस प्रकार की खुदाई से अनेक प्राचीन स्थानों का वास्तविक पता लगना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है।

कोल्हुआ गांव से पूर्व एक खेत में जो नील के लिये तैयार किया गया था, १० वा १२ फीट नीचे बहुत काल पूर्व ईंट के मकानों के खण्डहर मिले थे---ऐसा लोग कहते हैं। डा० विन्सेण्ट स्मिथ का अनुमान है कि ये कूटागारशाला के मकान रहे होंगे, किन्तु कुटागारशाला मर्कट-ह्रद के समीप थी और मर्कट-ह्रद से इस खेत की दूरी कुछ ज्यादा मालूम पड़ती है।

स्तम्भ से ७२० फीट उत्तर एक गहरा चौकोर छेद है। यहां पहले एक पुराना मन्दिर था, जिसमें बुद्ध की एक अच्छी मूर्त्ति स्थापित थी। आजकल यही मूर्त्ति स्तम्भ से सटे उत्तर स्तूप के ऊपर वाले मन्दिर में है, जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

(घ) विविध विचार

वैशाली-क्षेत्र के अधिक उत्तरी भाग में पुराने खण्डहर नहीं मिलते।

बखरा में चार मन्दिर हैं, पर किसी में पुरानो मूर्ति नहीं है।

आधुनिक किंवदन्ति के अनुसार प्राचीन वैशाली के चारों कोनों पर चार शिवलिङ्ग स्थापित थे। इनमें उत्तर के दो प्रकट हैं और दक्षिण के दो महादेव गुप्त हैं जो 'गुप्त महादेव' कहलाते हैं। यदि इस जनश्रुति पर विश्वास किया जाय तो आधुनिक बनिया और सिंह-स्तम्भ (कोल्हुआ) वैशाली के बाहर पड़ जायँगे। फिर चीनी यात्रियों के वर्णन से यह मेल नहीं खाता। दोनों गुप्त महादेवों के बीच मिट्टी की पुरानी दिवाल के चिन्ह हैं। उत्तर-पूर्वी 'महादेव' जो कूमन छपरा गाछी में हैं, वास्तव में बुद्धदेव की मूर्ति है, इसके चार मुख हैं। कई वर्ष पूर्व एक आस्ट्रियन पर्यटक ने इसे देखा था।

इसका जोड़ हिन्दुस्तान में सम्भवत: अभी तक नहीं मिला है। बोरूबोदूर में इस प्रकार की एक मूर्ति है। उत्तर-पश्चिमी लिंग उजले संगमरमर का और आधुनिक है। जनता में इसके प्रति बहुत श्रद्धा भाव है। डा० ब्लॉश ने लिखा है कि शिवरात्रि में बसाढ़ के सभी निवासी वहां पूजा करने गये थे।

प्राचीन नामों के अवशेष अथवा स्मारक आजकल भी वर्तमान हैं। वैशाली अब बसाढ़ बन गयी है और वणिकगाम बनिया हो गया है। कोल्हुआ कोल्लाग की याद दिलाता है और बसुकुण्ड से कुण्डगाम का स्मरण हो जाता है, जहाँ महावीर का जन्म हुआ था। डा० विन्सेण्ट स्मिथ का विचार है कि चक अबोरा नामक ग्राम (जिसे अमवारा भी कहते हैं) आम्रपुर का अपभ्रंश होगा। चतरा के पश्चिम का बौधा टोला नामक गांव बुद्ध का स्मरण कराता है। लालगंज के समीप का सिंगिया या सिंहिया जहां विहार में अङ्गरेजों की सबसे पहली फैक्टरी खुली थी। लिच्छवियों का स्मारक है, क्योंकि लिच्छवि सिंह वंश के थे, उनका प्रतीक सिंह था और उनके एक प्रसिद्ध सेनापति का नाम भी 'सिंह' मिलता है।

इस प्रकार वैशाली के भग्नावशेषों में प्राचीन भारत की सभ्यता छिपी है, उसका इतिहास छिपा है। किन्तु वैशाली अभी भी केवल भग्नावशेष नहीं है; इसकी लुप्त सभ्यता की राखों में उस नवजीवन की चिनगारियां निहित हैं, जो अपने प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा कर रहा है।

क्या शीघ्र इस नवजीवन का प्रादुर्भाव होगा?

बसाढ़ की खुदाई

[ले० राहुल सांकृत्यायन]

हाजीपुर से १८ मील उत्तर, मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ (बनिया-बसाढ़) गांव है; जिसके पास के गांव बखरा में अशोक स्तम्भ है। बसाढ़ की खुदाई में ईस्वी सन से पूर्व की चीजें मिली हैं। खुदाई के सम्बन्ध में कुछ लिखने के पूर्व स्थान के बारे में कुछ लिख देना उचित होगा।

वैशाली प्राचीन वज्जी-गण-तंत्र की[1] राजधानी थी। वज्जी देश की शासक क्षत्रिय जाति का नाम लिच्छवि था। जैन-ग्रन्थों से मालूम होता है कि, इसकी ६ उपजातियां थीं। इन्हीं का एक भेद[2] ज्ञातृ जाति था, जिसमें पैदा होने के कारण जैनधर्म-प्रवर्तक वर्धमान (महावीर) को नातपुत्र या ज्ञातृपुत्र भी कहते हैं। पाणिनि ने भी "मद्रवृज्ज्योः कन्ः" (अष्टाध्यायी ४।२।३१) सूत्र में इसी, वज्जी को वृज्जी कहकर स्मरण किया है। बुद्ध के

---

१ वज्जीदेश में आजकल के चम्पारन और मुजफ्फरपुर के जिले, दरभंगे का अधिकांश तथा छपरा जिले के मिर्जापुर, परसा, सोनपुर के थाने एवम् कुछ और भाग सम्मिलित थे।

२ रत्ती परगने में (जिसमें कि बसाढ़ गांव है) जिन जथरियों की सब से अधिक बस्ती है, वह यही पुराने ज्ञातृ हैं, जो भूत काल में इस बलशाली गणतन्त्र के सञ्चालक, और जैन-तीर्थङ्कर महावीर के जन्मदाता थे।

समय यह बज्जी-गण-राज्य उत्तरी भारत की पाँच प्रधान राजशक्तियों—अवन्ती वत्स, कोसल, मगध, और बज्जी—में से एक था। इस गणराज्य का शासन कब स्थापित हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इनके न्याय, प्रबन्ध आदिके सम्बन्ध में पाली-ग्रन्थों में जहां-तहां वर्णन है। बुद्ध के निर्वाण के तीन वर्ष बाद, प्रायः ई० पू० ४८० में, वज्जी-गणतंत्र को मगध-राज अजातशत्रु ने, बिन लड़े-भिड़े, जीता था। पीछे तो मगध-साम्राज्य के विस्तार में लिच्छवि जाति ने बड़ा ही काम किया। लिच्छवियों के प्रभाव और प्रभुत्व को हम गुप्त-काल तक पाते हैं। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त लिच्छवि-दौहित्र होने का अभिमान करता है। कितने ही विद्वानों का मत है कि, गुमनाम गुप्त वंश को साम्राज्य-शक्ति प्रदान करने में चन्द्रगुप्त का लिच्छवि-राजकन्या कुमारदेवी के साथ विवाह होना भी एक प्रधान कारण था। इस विवाह सम्बन्ध के कारण चन्द्रगुप्त को वीर[1] लिच्छवि जाति का सैनिक बल हाथ लगा था। गुप्तवंश का सबसे प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्त उसी लिच्छवि-कुमारी कुमारदेवी का पुत्र था। कौन कह सकता है, उसको अपनी दिग्विजयों में अपने मामा के वंश से कितनी सहायता मिली होगी। गुप्तवंश के बाद हम लिच्छवियों का नाम नहीं पाते। युन्-च्वेङ के समय वैशाली उजाड़सी थी। बेतिया का राजवंश उक्त लिच्छवि जाति के जथरिया-वंश के अन्तर्गत है; इसलिये सम्भव है, बेतिया-राजवंश के इतिहास से पीछे की कुछ बातों पर प्रकाश पड़े।[2]

---

१ आज भी जथरिया जाति लड़ने-भिड़ने में मशहूर है।

२ जिस प्रकार नन्द और मौर्य भारत के प्रथम ऐतिहासिक साम्राज्य-स्थापक थे, वैसे ही वज्जी ऐतिहासिक काल का एक महान् शक्तिशाली गण-तन्त्र था। क्या यह अच्छा न होगा कि, मुजफ्फरपुरवाले उसकी स्मृति में

वैशाली नाम के बारे में पाली-ग्रन्थों में लिखा है कि, दीवारों को तीन बार हटाकर उसे विशाल करना पड़ा; इसीलिये नगर का वैशाली नाम पड़ा। फलतः वैशाली के ध्वंसावशेष का दूर तक होना स्वाभाविक है। वैशाली नगर कहां तक था और कहां नगर के बाहर वाले गांव थे, इसका अभी तक निश्चय नहीं किया गया। अभी तक जो भी खुदाई का काम हुआ है, वह सिर्फ बसाढ़ के गढ़ में ही हुआ है। बसाढ़ के आसपास कोसों तक पुरानी बस्तियों के निशान मिलते हैं। बसाढ़ और बनिया गांव न सिर्फ स्वयं पुरानी बस्तियों पर बसे हैं; बल्कि उनके आसपास भी ऐसी बहुत भूमि है, जिसके नीचे भूतकाल के सन्देश वाहक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वैसे तो बसाढ़ के लोगों को मालूम ही था कि, उनका गांव राजा विशाल की राजधानी है; किन्तु सेंट मार्टिन और जनरल कनिंघम प्रथम सज्जन थे, जिन्होंने बसाढ़ के ध्वंसावशेषों के लिये पुरानी वैशाली होने का संकेत किया। तो भी बसाढ़ में सनियम खुदाई का काम सन् १९०३ ई० तक नहीं हुआ था। १९०३-४ ई० के जाड़ों में डा० ब्लॉश् के अधिनायकत्व में वहां की खुदाई हुई। उसके बाद, १९१३-१४ ई० में, फिर डाक्टर स्पूनर ने खुदाई का काम किया यह दोनों ही खुदाइयां राजा विशाल के

प्रतिवर्ष एक लिच्छविगणतन्त्र-सप्ताह मनावें, जिसमें और बातों के साथ योग्य विद्वानों के गणतन्त्र-सम्बन्धी व्याख्यान कराये जायँ? लिच्छवि-गणतन्त्र भारतीयों के जनसत्तात्मक मनोभाव का एक ज्वलन्त उदाहरण है, जो पाश्चात्यों के इस कथन का खण्डन करता है कि, भारतीय हमेशा एकाधिपत्य के नीचे रहनेवाले रहे है। लिच्छवि-गणतन्त्र पर सारे भारत का अभिमान होना स्वाभाविक है। एक लिच्छवि-जथरिया के नाते, आशा है, मौलाना शफी दाऊदी भी इसमें सहयोग देंगे।

ही गढ़ पर हुईं। डाक्टर ब्लॉश् (*Bloch*) अपनी खुदाई में गुप्त-काल के आरम्भ (चौथी शताब्दी के आरम्भ) तक पहुँचे थे और डाक्टर स्पूनर का दावा मौर्य (ई० पू० तीसरी शताब्दी) तक पहुँचने का था। यद्यपि जिस मुहर के बल पर उन्होंने ई० पू० तीसरी शताब्दी निश्चय किया, उसे स्व० राखालदास वन्द्योपाध्याय जैसे पुरालिपि के विद्वान् ने ई० पू० प्रथम शताब्दी का बतलाया, और यह अक्षरों को देखने से ठीक जँचता है।

राजा विशाल का गढ़ दक्षिण को छोड़कर तीन तरफ जलाशयों से घिरा है; और, वर्षा तथा शीतकाल में दक्षिण की ओर से—जिधर बसाढ़ गांव है—ही गढ़ पर जाया जा सकता है। डाक्टर ब्लॉश् की नाप से गढ़ उत्तर ओर ७५७ फीट, दक्षिण ओर ७८० फीट, पूर्व ओर १६५५ एवं पश्चिम ओर १६५० फीट विस्तृत है। सारी खुदाई में सिर्फ एक छोटी सी गणेश की मूर्ति डा० ब्लाश् को मिली थी, जिससे सिद्ध होता है कि, गढ़ धार्मिक स्थानों से सम्बन्ध न रखता था। गुप्त, कुषाण तथा प्राक्-कुषाण मुहरो को देखने से तो साफ मालूम होता है कि, यह राज्याधिकारियों का ही केन्द्र रहा है। वैसे गढ़ को छोड़कर बसाढ़ में दूसरी जगह भी अकसर पुरानी मूर्तियां मिलती हैं। गढ़ से पश्चिम तरफ, बावन-पोखर के उत्तरी भीटे पर, एक छोटासा आधुनिक मन्दिर है, वहां आप मध्यकालीन खण्डित कितनी ही—बुद्ध, बोधि-सत्व, विष्णु, हर-गौरी, गणेश, सप्तमातृका एवं जैनतीर्थङ्करों की— मूर्तियां पावेंगे।

गढ़ की खुदाई में जो सब से अधिक और महत्वपूर्ण चीजें मिलीं, वह हैं महाराजाओं, महारानियों तथा दूसरे अधिकारियों की स्वनामाङ्कित कई सौ मुहरें। डाक्टर ब्लॉश् अपनी खुदाई में ऊपरी तल से १० या १२ फीट तक नीचे पहुँचे थे। उनका सब से निचला तल वह था, जहां से आरम्भिक

गुप्तकाल की दीवारों की नींव शुरू होती है। ऊपरी तल से १० फीट नीचे "महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८०-४१३)-पत्नी, महाराज श्रीगोविन्द-गुप्तमाता, महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी" की मुहर मिली थी। जिस घर में वह मिली थी, वह देखने में चहबच्चाघरसा मालूम होता था; इसलिये उस समय का साधारण तल इससे कुछ फीट ऊपर ही रहा होगा। डा० स्पूनर और नीचे तक गये। वहां उन्हें ई० पू० प्रथम शताब्दी की वेसालिअनुसयानक-वाली मुहर मिली! डा० ब्लॉश् को सब से बड़ी ईंट १६½×१०×२ इञ्च नाप की मिली थी! एक तरह के खपड़े भी मिले, जो बिहार में आजकल पाये जानेवाले खपड़ों से भिन्न हैं। इस तरह के खपड़े लखनऊ म्यूजियम में भी रखे हैं, जो युक्तप्रान्त में कहीं मिले थे। इनकी लम्बाई चौड़ाई (इंच) निम्न प्रकार है :—

८ ×२½	८¼×२
५¼×२½×२½	८½×२⅜
७½×२	११×२

यद्यपि गढ़की खुदाई में हाथी-दांत का दीवट (दीपाधनी) तथा और भी कुछ चीजें मिली थीं; किन्तु सबसे महत्वपूर्ण वह कई सौ मुहरें हैं। गुप्त-काल से पूर्व की मुहरें बहुत थोड़ी मिली हैं, उनमें से एक पर निम्न प्रकार का लेख है:—

"वेसाली अनु + + + + ट + + कारे सयानक"

इसमें वेसाली अनुसयानक को वेसाली अनुसंयानक बनाकर डाक्टर फ्लीट ने "वैसाली का दौरा करनेवाला अफसर" अर्थ किया है; और, "टकारे" के लिये कहा है—यह एक स्थान के नाम का अधिकरण (सप्तमी) में प्रयोग है। अशोक के लेखों में पांच-पांच वर्ष पर खास अफसरों के

उनहत्तर]

अनुसयान या दौरा करने की बात लिखी है। उसी से उपर्युक्त अर्थ निकाला गया है। किन्तु सिवा वेसाली शब्द के, जो कि, स्थान को बतलाता है, और अर्थ अनिश्चित से ही हैं।

दूसरी मुहर में है—

"राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामीरुद्रसिंहस्य दुहितु

राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामीरुद्रसेनस्य

भगिन्या महादेव्या प्रभुदमाया"

'राजा महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिंह की पुत्री, राजा महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसेन की बहन महादेवी प्रभुदमाकी।'

महाक्षत्रप रुद्रसिंह और उनके पुत्र रुद्रसेन चष्टन-रुद्रदामवंशीय पश्चिमीय क्षत्रपों में से थे, जिनकी राजधानी उज्जैन थी। रुद्रसिंह और रुद्रसेनका राज्यकाल ईसा की तीसरी शताब्दी का आरम्भ है। प्रभुदमा के साथ का महादेवी शब्द बतलाता है कि, वह किसी राजा की पटरानी थी। क्षत्रपों और शातवाहन वंशीय आन्ध्रों का विवाह-सम्बन्ध तो मालूम ही है; किन्तु प्रभुदमा किसकी पटरानी थी, यह नहीं कहा जा सकता।

"हस्तदेवस्य" मुहर कुषाण-लिपि में है। गुप्तकालीन मुहरों में कुछ "भगवत आदित्यस्य", "जयत्यनन्तो भगवान् साम्बः", "नमः पशुपते" आदि देवता-सम्बन्धी हैं। कुछ "नागशर्मणः", "बुद्धमित्रस्य", "त्रिपुरक्षषष्ठिदत्तः", "ब्रह्मरक्षितस्य" आदि साधारण व्यक्तियों की हैं। राज्याधिकारियों की मुहरों के बारे में लिखने से पूर्व गुप्तकालीन शासनाधिकारियों के बारे में कुछ लिखना चाहिये। गुप्तसाम्राज्य अनेक भुक्तियों में* बँटा हुआ

---

*श्रावस्ती (सहेट-महेट) गोंडा-बहराईच जिलों की सीमा पर है; इसलिये गोंडा-बहराइच जिलों को श्रावस्ती-भुक्ति में मानना ही चाहिये।

[उत्तर

था। यह भुक्तियां आज कल की कमिश्नरियों से बड़ी थीं। हर एक भुक्ति में अनेक 'विषय' हुआ करते थे, जो प्रायः आज कल के जिलों के बराबर थे। विषय कहीं-कहीं अनेक 'पथकों' में विभाजित था; जैसा कि, हर्ष के बांसखेड़ावाले ताम्रपत्र से मालूम होता है। नवमी शताब्दी के पालवंशीय राजा धर्मपाल के लेख से मालूम होता है, कि उस समय भुक्तियों को मण्डलों में विभक्त कर, फिर मण्डल को अनेक विषयों में बांटा गया था। हो सकता है, साम्राज्य के आकार के अनुसार भुक्तियों का आकार घटता-बढ़ता हो। यद्यपि विषयों के नीचे पथकों का होना प्रायः नहीं देखा जाता, तो भी यदि पथक थे, तो उन्हें आज कल के परगने एवं ग्यारहवीं शताब्दी की पत्तला के समान जानना चाहिये। भुक्ति, विषय, ग्राम—इन तीन विभागों में तो कोई सन्देह ही नहीं है। उस समय भुक्ति के शासक को 'उपरिक' कहा जाता था, जिसे आज कल का गवर्नर समझना चाहिये। उपरिकको सम्राट् ही नियुक्त किया करता था। अपनी भुक्ति भीतर उपरिक विषय-पतियों को नियुक्त किया करता था, जिन्हें नियुक्तक या कुमारामात्य कहा जाता था। विषय-पति कुमारामात्य का निवास-नगर अधिष्ठान कहलाता था; और, उस नगर के शासन में नियम या नागरिक-परिषद् का बहुत हाथ रहता था! यह निगम वही संस्था है, जिसके प्रभाव का उल्लेख नेगम (=नैगम) के नाम से बुद्ध-काल में भी बहुत पाया जाता है। गुप्तकाल में श्रेष्ठी (=नगर-सेठ), सार्थ-

---

सातवीं शताब्दी के हर्षवर्द्धन के मधुवनवाले ताम्र-लेख से मालूम होता है कि, आजमगढ़ श्रावस्ती-भुक्ति में ही था। दिघवा-दुबौली (जि० सारन) का ताम्रपत्र यदि अपने स्थान पर ही है, तो नवीं शताब्दी में सारन भी श्रावस्ती-भुक्ति में था। इस प्रकार गोंडा, बहराइच, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और सारन जिले कम से कम श्रावस्ती-भुक्ति में थे।

वाह (=बनजारों का सरदार) और कुलिक (प्रतिष्ठित नागरिक) मिलकर निगम कहे जाते थे। इन्हें और प्रथम कायस्थ (प्रधान लेखक) को मिलाकर विषय-पति की परामर्श-समिति सी होती थी।

अब बसाढ़ की खुदाई में मिली ऐसी कुछ मुहरों को देखिये—

उपरिक[2]
- (१) [1]तीरभुक्त्युपरिकाधिकरणस्य।
- (२) तीरभुक्तौ विनयस्थितिस्थाप (क) आधिकरण(स्य)।

कुमारा०
- (१) तीर-कुमारामा[3]त्याधिकरणस्य
- (२) कुमारामात्याधिकरणस्य।
- (३) (वै) शाल्यधिष्ठानाधिकरण।
- (४) (वै) शालविषय:[4] ...।

निगम
- (१) श्रेष्ठि-सार्थवाह-कुलिक-निगम।
- (२) श्रेष्ठिकुलिकनिगम।
- (३) श्रेष्ठिनिगमस्य।

श्रेष्ठि
- (१) गोम्पिपुत्रस्य श्रेष्ठिकुलोटस्य।
- (२) श्रेष्ठिश्रीदासश्य।

सार्थवाह
- सार्थवाह दोड्ड... ... ...

---

१ तीरभुक्ति=तिरहुत, जिसमें सम्भवत: गंडक, गङ्गा, कोशी और हिमालय से घिरा प्रदेश शामिल था।

२ उपरिक की मुहर में, दो हाथियों के बीच में, गुप्तों का लांछन लक्ष्मी है, जिनके बायें हाथ में अष्टदल पुष्प है।

३ मुहर में दो हाथियों के बीच लक्ष्मी हैं, जिनके हाथ में सप्तदल पुष्प है।

४ सम्भवत: विषय।

प्रथम कुलिक*	(१) प्रथमकुलिकहरि: । (२) प्रथमकुलिकोग्रसिंहस्य ।
कुलिक	(१) कुलिक भगदत्तस्य । (२) कुलिक गोरिदासस्य । (३) कुलिक गोएडस्य । (४) कुलिक हरि: । (५) कुलिक ओमभट्ट ।

इनके अतिरिक्त कुछ मुहरें राजा, युवराज तथा उनसे विशेष सम्बन्ध रखनेवालों की भी हैं। जैसे---

(१) महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तपत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी ।

(२) श्रीपर (मभट्टारक) पादीय कुमारामात्याधिकरण ।

(३) श्रीयुवराज भट्टारकपादीय कुमारामात्याधिकरण ।

(४) युवराजभट्टारकपादीय बलाधिकरणस्य ।

इनके अतिरिक्त रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, दण्डनायक (न्याय-मन्त्री) और भटाश्वपति (घोड़सवार, सेनापति आदि) की मुहरें मिली हैं---

(१) महादण्डनायकाग्निगुप्तस्य ।

(२) भटाश्वपति यज्ञवत्सस्य (?)

युवराज भट्टारकपादीय-कुमारामात्याधिकरण देखकर तो मालूम होता है, तीर-भुक्ति के 'उपरिक' स्वयं युवराज ही होते थे। द्वितीय गुप्तसम्राट् अपने को लिच्छवि-दौहित्र कहकर जिस प्रकार अभिमान प्रकट करता है, उससे वैशाली को यह सम्मान मिलना असम्भव भी नहीं मालूम होता ।

---

* नगर में श्रेष्ठी और सार्थवाह एक-एक हुआ करते थे । निगमसभा के बाकी सदस्य सत्कुलिक कहे जाते थे, जिनमें प्रमुख को 'प्रथम कुलिक' कहा जाता था । यही कारण है, जो मुहरों में सब से अधिक कुलिकों की मुहरें हैं ।

बसाढ़ में प्राप्त सिक्के

[ले०— श्रीरामदेव शर्मा]

सन् १९११-१२ ई० में डा० स्पूनर ने बसाढ़ की खुदाई की थी। इस खुदाई में उन्हें जो चीजें मिलीं, उनकी सूची बनायी गयी। यह सूची १९१३-१४ की पुरातत्त्व-विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में निकली है। इसके अनुसार निम्नलिखित आठ सिक्के (नम्बर ११, ३८, ११७, २८७, ४३३, ५०६, ५११, ७०१) उस समय मिले थे। नम्बर वार्षिक रिपोर्ट में दी गयी सूची के हैं।

(१) नम्बर ११-यह तांबे का पञ्चमार्क्ड सिक्का है। आठ फीट नीचे मिला था।

(२) नम्बर २८७—यह चांदी का पञ्चमार्क्ड सिक्का है, करीब करीब गोल है। साढ़े चार फीट नीचे मिला था।

(३) नम्बर ४३३—यह छोटा पञ्चमार्क्ड सिक्का है। सोलह फीट नीचे मिला था।

(४) नम्बर ५११—यह तांबे का सिक्का है। तीन इञ्च नीचे मिला था। वी० स्मिथ के केटलाग ऑव इण्डियन म्यूजियम पृ० २०२ फलक २३ चित्र ३ से इसकी तुलना होनी चाहिये।

(५) नम्बर ७०१—यह तांबे का सिक्का है, कदफिस द्वितीय का है; साढ़े पांच फीट नीचे मिला था। स्मिथ के केटलाग ऑव इण्डियन म्यूजियम फलक ११ नम्बर ७ से इसकी तुलना होनी चाहिये।*

---

* इस सिक्के के सम्बन्ध में डा० स्पूनर ने लिखा है—"इस गड्ढे में

(६) नम्बर ३८ —तांबे का छोटा मुसलिम सिक्का, बहुत अच्छी हालत में है, एक कुली ने लाकर दिया था। पांच फीट नीचे मिला था।

(७) नम्बर ११७—तांबे का मुसलिम सिक्का। नौ फीट नीचे मिला था।

पाया गया सिक्का साढ़े पांच फीट नीचे उत्तरी किनारे पर केन्द्र से कुछ पूर्व हट कर मिला था। इस पर ७०१ का नम्बर अंकित किया गया है। यह स्पष्ट रूप से पढ़ा जाने वाला कदफिस द्वितीय का सिक्का है, जो विन्सेएट स्मिथ के 'केटलाग आव द क्वाइन्स इन दी इरिडयन म्यूजियम' में फलक ११ के चित्र ७ के रूप में दिखलाया गया है। कदफिस द्वितीय के सिक्के अवश्य ही पूर्व में बनारस तक पाये गये हैं, किन्तु मेरा ख्याल है कि इसको छोड़ कोई दूसरा सिक्का पूर्व में वैशाली तक उपलब्ध नहीं हुआ है। यह बात किसी विशेष महत्त्व की नहीं है, क्योंकि बनारस और वैशाली में जो अन्तर है, वह नगण्य है। इन पिछले सिक्कों के बारे में कोई निश्चित बात ज्ञात न होने के कारण तब तक के लिये यह बसाढ़ वाला सिक्का इस राजा का सब से पूर्व में पाया गया सिक्का माना जा सकता है।" उसी पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी में डा० स्पूनर लिखते हैं कि "ऊपर का विवरण लिखा जाने के बाद, मुझे पाटलिपुत्र में तांबे और सोने (दो नमूने) के बहु-संख्यक कुशान सिक्के मिले हैं।" किन्तु, मेरी राय में, इससे बसाढ़ वाले सिक्के का महत्त्व कम नहीं होता, क्योंकि बसाढ़ उत्तरी बिहार में है और इस मुद्रा से कदफिस द्वितीय का केवल दक्षिणी बिहार पर ही नहीं, बल्कि उत्तरी बिहार (तिरहुत) पर भी अधिकार सिद्ध होता है। तारानाथ ने अश्वघोष के जीवन का वर्णन करते हुए लिखा है कि "लघु यूची के राजा ने मगध पर आक्रमण किया और बुद्ध के भिक्षापात्र एवं अश्वघोष को ले गया।" इससे प्रकट होता है कि कनिष्क ने वैशाली पर भी आक्रमण किया था; क्योंकि बुद्ध ने कुशीनगर जाते समय निर्वाण के कुछ पहले लिच्छवियों को अपना भिक्षापात्र देकर उन्हें वैशाली लौटाया था। तब से भिक्षापात्र वैशाली वालों के हाथ में था।

(८) नम्बर ५०६—तांबे का सिक्का, मोटा, अनियामित, पता नहीं किस युग का है, शायद मुसलिम। छः इंच नीचे मिला था।

मौलवी मुहम्मद हमीद कुरेशी, बी० ए० ने अपने ग्रन्थ List of Ancient Monuments in Bihar and Orissa (१६३१ ई० में प्रकाशित) के पृष्ठ २५ पर बसाढ़ के सिक्कों की जो सूची दी है, वह यों है—

(१) पञ्चमार्क्ड, एक ओर सूर्य, दूसरी ओर प्रतीक अस्पष्ट।

(२) पञ्चमार्क्ड, किसी ओर स्पष्ट नहीं।

(३) पञ्चमार्क्ड, किसी ओर स्पष्ट नहीं।

(४) लेख-रहित गोल सिक्का, एक ओर हाथी, दूसरी ओर उज्जैन प्रतीक।

(५) कनिष्क, एक ओर राजा वेदी पर खड़ा है, दूसरी ओर दौड़ते हुए मरुत् देवता।

(६) अलाउद्दीन

(७) अलाउद्दीन

(८) सुल्तान इब्राहीम शाह

(६-११) तीन सिक्के

(१२) एक सिक्का मुजफ्फरपुर जिले के कलक्टर ने दिया था।

ये सिक्के पटना म्यूजियम में रखे हैं।

डा० स्पूनर की सूची से कुरेशी की सूची की तुलना करना अच्छा होगा। इसीलिये ऊपर दोनों सूचियां दे दी गयी हैं।

बसाढ़ से सटे पश्चिम चक्करामदास में एक म्यूजियम है जिसकी स्थापना १६४१ ई० में हुई थी। वहां भी हिन्दू और मुसलिम युगों के कई सिक्के रखे हैं। इनमें कुछ तो बहुत ही अच्छी हालत में और सुन्दर हैं।

निश्चय ही यह खेद की बात है कि अभी तक बसाढ़ में प्राप्त सिक्कों का समुचित अध्ययन नहीं हुआ है।

[छहत्तर

प्रजातन्त्र वैशाली

[ले० प्रो० सूरजदेव नारायण, एम० ए०, बी० एल०
प्रो० हरिरञ्जन घोषाल, एम० ए०, बी० एल०]

प्राचीन लिच्छवियों की शासन-प्रणाली पर विचार करना बिलकुल पिष्टपेषण नहीं होगा, यद्यपि इस विषय पर विद्वानों का ध्यान बहुत दिनों से आकृष्ट रहा है। यह निर्विवाद रूप से ऐतिहासिक सत्य है कि बुद्ध के समय वैशाली का प्रजातन्त्र वज्जि-संघ के आठ सदस्यों में से था। किन्तु अभी तक इस प्रजातन्त्र के उद्गम अथवा इसकी स्थापना के कारण पर स्पष्ट रूप से विचार करने का प्रयत्न नहीं हुआ है। पुराणों तथा कतिपय अन्य ग्रन्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण युग में मिथिला और वैशाली दोनों में राजतन्त्र शासन[1] कायम था। वैशालिक वंश का संस्थापक विशाल रामायण[2] द्वारा इक्ष्वाकु का पुत्र और पुराणों द्वारा नाभाग का वंशज माना गया है। विष्णु पुराण में नाभाग[3] से लेकर ३४ राजाओं की वंशावली दी गयी है। सुमति, जिस राजा का नाम सब से

---

१ देखिये डा० एच० सी० राय चौधरी का पोलिटिकल हिस्टरी आफ ऐंशियएट इण्डिया, पृ० ७५।

२ पार्जिटर, ऐंशियएट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृ० ५७।

३ देखिये श्याम नरायण सिंह का हिस्टरी आफ तिरहुत पृ० २१ और वी० रंगाचार्य, प्री-मुसलमान इण्डिया, पृ० ४२४—३२।

पीछे है, विशाल की दसवीं पीढ़ी में दिखलाया गया है और यदि रामायण के प्रमाण पर विश्वास किया जाय तो वह अयोध्या[४] के राजा दशरथ का समकालीन था। श्री पार्जिटर इक्ष्वाकु के साथ विशाल का सम्बन्ध अस्वीकार करने के पक्ष में हैं, किन्तु उनका कहना है कि वैशालिक राजाओं की सूचियां जो कई ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, करीब करीब मिलती-जुलती हैं[५]। सुमति के बाद पुराणों अथवा महाकाव्यों में वंशावली-क्रम नहीं मिलता और बुद्ध-युग के पहले तक वैशाली का इतिहास बिलकुल अन्धकारपूर्ण है।

कब और किस प्रकार वैशाली ने गणतन्त्र को अपनाया? डा० एच० सी० रायचौधरी ने मिथिला[६] में राजतन्त्र से प्रजातन्त्र में परिवर्तन होने का कारण बतलाया है। किन्तु वैशाली में इस प्रकार के किसी परिवर्त्तन के सम्बन्ध में हमें कुछ मालूम नहीं है। फिर भी इतना तो सच ही है कि लिच्छवि प्रजातन्त्र का जन्म बुद्ध के बहुत पहले हो चुका था। बुद्ध ने स्वयं वज्जियों की बहुत पहले से आती हुई प्राचीन संस्थाओं[७] की प्रशंसा खुले शब्दों में की है। यह भी सम्भव है कि महाभारत युद्ध के समय में लिच्छवि गण का अस्तित्व रहा हो। जब भीष्म गणों के नाश के सामान्य कारणों का वर्णन करते हैं और उनकी समृद्धि एवं जीवित रहने का कारण

---

४ पार्जिटर, उल्लिखित, पृ० ९७।

५ वही।

६ एच० सी० रायचौधरी, उल्लिखित, पृ० ५२–५३।

७ देखिये के० पी० जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी, पृ० ४८। वैशाली में बुद्ध के आगमन के लिये देखिये, राधाकुमुद मुकर्जी, मेन ऐण्ड थॉट इन ऐंशियण्ट इण्डिया, पृ० ६२–६३।

उनके संघ-जीवन की अविच्छिन्न परम्परा बतलाते हैं८ तब उनकी दृष्टि में अवश्य ही लिच्छवि और वज्जि-संघ की अन्य जातियां हैं ९। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि वैशाली गण की स्थापना मिथिला से लौटते समय वैशाली के राजा सुमति का आतिथ्य स्वीकार करने वाले१० रामायण के नायक राम और महाभारत युद्ध के बीच के समय में हुई। रामायण की रचना की तिथि जो कुछ भी रही हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें चित्रित ऐतिहासिक घटनाएँ महाभारत युद्ध से बहुत पहले घटित हुई थीं। राम के पुत्र कुश के बाद से बृहद्बल तक, जो उस वंश का अन्तिम राजा था और महाभारत युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मारा गया, अठाईस राजाओं की सूची पुराणों में मिलती है११। उस युद्ध की निश्चित तिथि

---

८ देखिये जर्नल ऑफ बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, सितम्बर १९१५, पृ० १७६–१७७।

९ डा० बेनी प्रसाद का अनुमान है कि भीष्म ने जिन गणों का उल्लेख किया है वे ऐसे प्रजातन्त्र थे जो "मुख्यतः हिमालय की तराई में कुछ समय के लिये फले फूले थे।" —(द थ्योरी ऑव गवर्नमेण्ट इन ऐंशियण्ट इण्डिया, पृ ९९)। किन्तु ऐसा अनुमान करने का कोई कारण नहीं है कि ये प्रजातन्त्र कुछ ही समय के लिये फले-फूले; प्रत्युत् भीष्म ने अपने समय के प्रजातन्त्रों के सम्बन्ध में संघ स्थापित करने और प्रजातन्त्र की अन्य स्वाभाविक विशेषताओं का जो उल्लेख किया है, उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उनका मतलब अन्य प्रजातन्त्रों के साथ-साथ लिच्छवि गण से भी है।

१० एस. एन. सिंह, हिस्टरी आव तिरहुत, पृष्ठ २४।

११ देखिये वी. रंगाचार्य, उल्लिखित, पृष्ठ ३९४–३९५।

को ढूंढ निकालना किसी प्रकार भी आसान नहीं है। किन्तु महाकाव्यों एवं पुराणों के प्रमाणों के आधार पर डा० हे० च० रायचौधरी का विचार है कि अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक करीब चौदहवीं सदी ई० पू० के मध्य हुआ था[१२]। यदि ऐसी बात हो तो बुद्ध के कई शताब्दी पूर्व वैशाली प्रजातन्त्र का अस्तित्व मानना पड़ेगा।

इस बात के जानने का हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं कि वैशाली में किस प्रकार राजतन्त्र के पश्चात् प्रजातन्त्र का आगमन हुआ। क्या सुमति वैशालिक वंश का अन्तिम राजा था? केवल इसी बात से कि वंशावली के नाम वहीं पर आकर रुक जाते हैं, ऐसा परिणाम नहीं निकाला जा सकता। फिर भी एक बात स्पष्ट है जिससे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जातक के अनुसार लिच्छवि शासन के अधिकारी जो ७७०७ पुरुष थे वे अपने को 'राजुनम्' [१३] कहते थे। शायद वे इसलिये ऐसा कहे जाते रहे हों कि किसी प्राचीन राजवंश मे वे प्रादुर्भूत हुए हों। किन्तु हम 'रजुनम्' शब्द को उतना महत्त्व नहीं देते जितना इस बात को कि वैशाली के ७७०७ शासक राजकुलोद्भव कुमारों जैसा वर्ताव करते थे। भद्दसाल जातक में वैशाली की उस पुष्करिणी का उल्लेख है जहां से राजाओं के अभिषेक के लिये जल मँगवाया जाता था [१४]। इस पुष्करिणी के जल की भली भांति रक्षा की जाती थी और जो राजकुल का नहीं था, वह उसके जल को भ्रष्ट नहीं कर सकता था। कथा है कि एक बार कोसल के सेनापति ने अपनी

---

१२ हेमचन्द्र रायचौधरी, उल्लिखित, पृष्ठ १६।

१३ देखिये के० पी० जायसवाल, उल्लिखित, पृष्ठ ५१।

१४ देखिये आर. सी. मजूमदार, कारपोरेट लाइफ इन ऐंशियंट इण्डिया, पृष्ठ २२७।

स्त्री का इसमें स्नान कराया था, जिस लिये पांच सौ क्रुद्ध लिच्छवि राजाओं ने उसका बुरी तरह पीछा किया था[१५]। ऐसा प्रतीत होता है कि वैशाली प्रजातन्त्र की स्थापना किसी क्रान्ति अथवा युद्ध के पश्चात् जिसके फलस्वरूप राजतन्त्र का अन्त हुआ हो, नहीं हुई थी। यह सच है कि यहां प्रजातन्त्र के पूर्व राजतन्त्र प्रचलित था। यहां का प्रजातन्त्र क्रमिक विकाश का परिणाम प्रतीत होता है। राजा के ज्येष्ठ पुत्रों के साथ अधिकारों का उपयोग करने के कारण राजा के छोटे राजकुमारों द्वारा यह परिवर्तन लाया गया मालूम पड़ता है। प्रारम्भ में एकतन्त्र राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके सभी पुत्रों को राज्याधिकार मिला होगा और इस प्रथा के चलते रहने के फल स्वरूप राज करने वाले कुमारों की संख्या क्रमश: बढ़ती गयी होगी यहां तक कि उनकी संख्या ७७०७ पहुँच गयी। सम्भवत: जिस जातक ने इस संख्या का उल्लेख किया है उसकी रचना के समय लिच्छवि शासकों की यही संख्या रही हो। यह संख्या लिच्छवि शासन-विधान द्वारा निश्चित संख्या नहीं मानी जा सकती।

राजतन्त्र से प्रजातन्त्र में परिवर्तित होने का एक दूसरा कारण लिच्छवियों की बढ़ती हुई व्यापारिक समृद्धि के फलस्वरूप वैशाली के कुछ लोगों के पास अर्थसञ्चय हो सकता है। मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि राजा नाभाग ने एक वैश्य कन्या से विवाह किया था, जिससे उनके वंशज वैश्य हो गये, किन्तु विदेह के राजा क्षत्रिय ही रहे[१६]। इससे यह पता चल सकता है कि वैशाली अति प्राचीन काल से ही व्यापार के लिये प्रसिद्ध थी। राजपरिवारों के सदस्यों के वैश्य होने के कारण यह असम्भव नहीं कि राजाओं

---

१५ वही

१६ देखिए एस० एन० सिंह, उल्लिखित, पृ० २२ (पादटिप्पणी)

के छोटे लड़के व्यापार में सक्रिय भाग लेते रहे हों। अर्थसञ्चय एवं राज-कुलोद्भव होने की भावना होने से क्रमशः उनके मन में शासन कार्य में सक्रिय भाग लेने की इच्छा उत्पन्न हुई होगी और इस प्रकार राजतन्त्र का अन्त कर प्रजातन्त्र की स्थापना हुई होगी १७।

लिच्छवि गण का चाहे जो भी उद्गम रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि इसमें खास लोग ही भाग ले सकते थे, सब नहीं। आबादी के एक भाग में ही राज्याधिकार सीमित था जिसकी संख्या एक समय ७७०७ थी। ये शासक राजधानी के रहने वाले थे और उपराजा, सेनापति एवं भाण्डागारिक जैसे राजपुरुषों द्वारा शासन करते थे। जातक में लिखा है कि ऐसे राज-पुरुषों की संख्या राजाओं की संख्या के बराबर थी १८। ऐसा मालूम पड़ता है कि शासक वर्ग के हर सदस्य का अधिकार-क्षेत्र किसी खास इलाके में पड़ता था और इस प्रकार के बहुत ही इलाके या विभाग थे, क्योंकि लिच्छवि गण में केवल वैशाली का नगर ही नहीं सम्मिलित था, इसमें बाहर के विस्तृत राज्य भी शामिल थे १९। हर इलाके का शासन उपराजा या

---

१७ यह जानने की बात है कि कौटिल्य ने दो प्रकार के सघों का वर्णन किया है—(१) राजशब्दोपजीवी अर्थात् वे जिनके शासक राजा की उपाधि धारण करते थे, (२) आयुधजीवी या वार्ताशस्त्रोपजीवी जिन्हें डा. के. पी. जायसवाल "Nation-in-arms republics" कहते हैं। यह असम्भव नहीं कि प्रथम वर्ग के संघ साधारणतः हमारे उपरिलिखित ढंग से बन गये हों।

१८ देखिये आर. सी. मजूमदार, उल्लिखित, पृ० २२७

१९ वज्जिदेश की सीमा के लिये देखिये जर्नल ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग ६, १९२०, पृ० २५९–२६२। वैशाली राज्य की

[बेरासी

प्रतिनिधि के हाथ में था। यह सम्भव नहीं मालूम पड़ता कि समस्त राज्य से सम्बन्ध रखने वाली बातों का निर्णय सर्वदा कई हजार शासकों द्वारा ही होता था। विशेष महत्त्वपूर्ण बातों के लिये ये सभी शासक बहुधा संस्थागार या सार्वजनिक भवन में मिलते थे[२०]। दैनिक शासन कार्य के लिये एक कार्यकारिणी समिति थी, ऐसा प्रतीत होता है। जैन कल्प-सूत्र में उल्लिखित 'नव-गण-रयनो' सम्भवत: लिच्छवि गण के नौ कार्यकारक (एग्जिक्यूटिव) अफसर थे, जैसा कि डा. रमेश चन्द्र मजूमदार का अनुमान है[२१] और सम्भवत: इन्हीं से कार्यकारिणी समिति का निर्माण होता था।

लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली के सम्बन्ध में भी हम एक बात कह देना चाहते हैं। जैसा डा० का० प्र० जायसवाल ने कहा है, वैशाली में बहुत से छोटे बड़े न्यायालय थे। विभिन्न प्रकार के राजपुरुष इनके सभापति होते थे[२२]। न्याय-प्रणाली की एक खास विशेषता यह थी कि अभियुक्त को तभी दण्ड मिलता था जब वह क्रमश: सात न्याय-समितियों से एक स्वर से अपराधी करार दिया जाय। इनमें से किसी एक के द्वारा वह छोड़ दिया जा सकता था[२३]। इस प्रकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा इस ढंग से की जाती थी जिसकी उपमा सम्भवत: संसार के इतिहास में नहीं है।[२४]

सीमा पर कनिंगहम का मत जानने के लिये देखिये ऐंशियण्ट ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया, पृ० ५०८–९।

२० के० पी० जायसवाल, उल्लिखित, पृ० ५२

२१ आर० सी० मजूमदार, उल्लिखित, पृ० २३२

२२ के० पी० जायसवाल उल्लिखित, ५२–५३

२३ आर० सी० मजूमदार, उल्लिखित पृ० २३३

२४ वही

लिच्छविगण का एक बड़ा बल था वज्जि-संघ के अन्य सदस्यों से संयुक्त रहना। जैसा कि भीष्म ने कहा था, "गणों को यदि जीवित रहना है तो उन्हें सर्वदा संघ-प्रणाली का अवलम्बन करना चाहिये"।[२५] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भी इस पर बहुत जोर दिया है।[२६] प्राचीन भारतीय शासकों ने संघ की उपयोगिता अच्छी तरह समझी थी। उनका विश्वास था कि "संघ-सेना के बल से" भौतिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती थी। महाभारत में इस बात का प्रमाण मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि बाहरी राज्य भी संघ राज्यों से सन्धि के इच्छुक रहते थे।[२७] इस प्रकार मल्लों लिच्छवियों से संघ कायम किया था। इस पर विश्वास करने का कारण है कि यह संघ महावीर की मृत्यु के समय था[२८]। इस संघ की वास्तविक प्रकृति को ढूँढ़ निकालना मुश्किल है। यह एक प्रकार की सन्धि थी अथवा आजकल के अर्थ में फेडरेशन था, यह कहना कठिन है। लेकिन आजकल के ही समान संघ-समिति में क्षेत्रफल अथवा जनसंख्या का कुछ भी विचार न करके संघ-बद्ध राज्यों की समानता अच्छी तरह बरती जाती थी। यह इस बात से स्पष्ट है कि संघ कौंसिल में नौ लिच्छवियों से और नौ मल्लों से कुल अठारह सदस्य थे[२९]। डा० जायसवाल का विचार है

---

२५ जर्नल ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, सितम्बर, १९१५, पृ० १७७

२६ अर्थशास्त्र, पृ० ३७६

२७ जर्नल ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, सितम्बर १९१५, पृ० १७७

२८ के० पी० जायसवाल, उल्लिखित, पृ० ५४

२९ वही

कि कोसल के राजा के साथ भी इस संयुक्त कौंसिल का किसी प्रकार का राजनीतिक समझौता या मेल था३०। इस बातपर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मगध कोसल और लिच्छवियों का समान रूप से शत्रु था।

यहां प्राचीन भारतीय प्रजातन्त्रों के, विशेषकर लिच्छवियों के, शासन कार्य पर एक दृष्टि डाल लेना अच्छा होगा। गण की साधारण-सभा में समानता का सिद्धान्त बरता जाता था। अर्थ पर पूरा ध्यान दिया जाता था। युद्ध-कला उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी, जितनी शान्ति-कला। लिच्छवियों की शिक्षा और प्रतिभा एकाङ्गी न थी। राजनीतिक उन्नति उतने ही गहरे विचार का विषय थी जितनी जनता की आर्थिक उन्नति। डा० जायसवाल के शब्दों में, अधिकारों के विभाग एवं न्याय-प्रणाली से यही सूचित होता है कि उस समय तक लोगों ने गणों का कार्य संचालन करने का बहुत अधिक अनुभव प्राप्त कर लिया था और उनमें इस कार्य के लिये बहुत उच्च कोटि की समझदारी आ गयी थी ३१।

शासन-प्रणाली की सफलता की सबसे अच्छी कसौटी यह है कि उसके द्वारा राज्य चिरस्थायी हो। भारत की प्रजातन्त्र या गण शासन-प्रणाली—उदाहरणार्थ लिच्छवि गण की शासन प्रणाली-राज्यों को चिर-

---

३० वही

३१ डा० बी० सी० लॉ का विचार है कि "बौद्धसंघ का संगठन करने में बुद्ध ने उत्तरपूर्वी भारत के, विशेष कर लिच्छवियों के राजनीतिक संघ को अपना आदर्श माना था" चुनीलाल आनन्द के 'ऐन इण्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री ऑव गवर्मेन्ट इन इण्डिया' पृ० ७१ पर उद्धृत। डा० काशी प्रसाद जायसवाल की भी यही राय है (हिन्दू राज्य-तन्त्र, पहला खण्ड पृ० ६८)।

स्थायी बनाने में बहुत अधिक सफल प्रमाणित हुई थी ३२। लिच्छवि शिशुनाग एवं मौर्य साम्राज्यों के बाद भी बच रहे थे। उनने गुप्त-साम्राज्य के निर्माण में भी सहायता दी। उनके सम्बन्ध के लेख भी बहुत समय तक के मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनका प्रजातन्त्र स्थायित्व की कसौटी पर पूरा उतरा था*।

---

३२ डा० जायसवाल, हिन्दू राज्य-तन्त्र, पहला खण्ड, पृ० २८६।

*इस लेख के सम्बन्ध में हम मुजफ्फरपुर ग्रि० भूमिहार ब्राह्मण कालेज के इतिहास के सीनियर प्रोफेसर श्री शिवनाथ बोस के उनकी कतिपय बहुमूल्य सम्मतियों के लिये, कृतज्ञ हैं।—लेखकद्वय।

वैशाली सम्बन्धी साहित्य

श्री व्रजेश्वर प्रसाद, एम० ए०, डिप०—इन—एड,
अध्यापक, जिला स्कूल, मुजफ्फरपुर

यद्यपि वैशाली का प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है, तथापि इस सम्बन्ध में अभी एक पर्याप्त अनुशीलन नहीं हुआ है। प्राचीन साहित्य में यदि अनुसन्धान किया जाय, तो इस सम्बन्ध में बड़ी उपयोगी सामग्री मिल सकती है। रामायण, मार्कण्डेय पुराण, त्रिपिटक, महावस्तु, महावंश, बुद्धघोष रचित ग्रन्थ—आदि के अध्ययन से वैशाली का पूरा इतिहास तैयार किया जा सकता है। प्राचीन संस्कृत, बौद्ध एवं जैन साहित्य के अतिरिक्त तिब्बती साहित्य में भी काफी सामग्री है। फाहियान और हुएन-सांग नामक चीनी यात्रियों ने भी इस स्थान की यात्रा की थी और अपनी यात्रा का विस्तृत विवरण लिखा है।

यों तो बौद्धधर्म एवं जैनधर्म तथा प्राचीन भारतीय शासन-संस्थाओं के इतिहास में वैशाली का विशिष्ट स्थान है और इन विषयों पर लिखी गयी कोई भी किताब वैशाली और उसके निवासियों की चर्चा के बिना अधूरी ही रहेगी, फिर भी निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं रिपोर्टों और पुस्तकों ने सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान वैशाली की ओर आकर्षित किया :—

(क) पत्र-पत्रिकाएँ—

1 J. A. S. B. (1835) pp. 128—131

2 Indian Antiquary, XVII (1888) pp. 303—7 and Indian Antiquary XVIII (889) pp. 1,105,300.

3 Vaisali by Dr. Vincent A Smith in J. R. A. S. 1902 pp. 267—288.

4 Tibetan Affinitis of the Lichchhavis by Vincent A. Smith in Indian Antiquary Vol. XXXII (1903) pp. 233—236.

(ख) पुरातत्व विभाग के तथा अन्य प्रकाशन—

1 Archaeclogical Survey of India Reports by Cunningham, Vol. I (1871) pp. 54—64 and Vol. XVI (1883) pp 6—16 & 89—93,

2 Reports of the Archaeological Surveyor, Bengal circle, for 1901—02 and 1903—04

3 Annual Progress Reports of the Superintendent, Archaeological Survey of India, Eastern circle, 1902 p. 8; 1904 pp. 17—20; 1911—12 pp. 43—52.

4 Archaeological Survey of India, Annual Reports for 1903—04 and 19 3—14

5 List of the Ancient Monument in Bengal (1895) pp. 396—402 and

List of Ancient Monuments in the Province of Bihar and Orissa by Kuraishi (1931) pp. 20—30.

(ग) गजेटियर—

1 Muzaffarpur District Gazetteer by L. S. S. O'Malley, I. C. S. (1907) pp. 12-25 and 138-42

[अठासी

(घ) पुस्तकें—

डा० बी० सी० लाहा ने लिच्छवियों का वृत्तान्त प्राचीन साहित्य के आधार पर बड़े परिश्रम से लिखा है, जो उनकी इन तीन पुस्तकों में उपलब्ध होता है—

1 Ksatriya Clans in Buddhist India (1922)
2 Some Kshatriya Tribes of Ancient India
3 Tribes in Ancient India

वैशाली की चर्चा इन पुस्तकों में भी है—

1 Ancient Geography of India by General Sir Alexander Cunningham, pp. 443—46.
2 Asoka By Dr. V. A. Smith, pp. 117—18.
3 Ancient Indian Historical Tradition by Pargiter.
4 Hindu Polity by Dr. K. P. Jayaswal
5 History of Tirhut by Shyam Narain Sinha.

फारसी की इन किताबों में भी वैशाली अथवा उसके खण्डहरों के बारे में जिक्र है—

१ आईने अकबरी (ग्लैडविन), दूसरा भाग, पृ० १६८।
२ मआसिरुल उमरा, दूसरा भाग, पृ० ५८०–८३।
३ मुखबिरुल वासिलीन (हस्तलिखित), पृ० १४, १०७–८।
४ आईने-तिरहुत, ले० बिहार लाल,, लखनऊ, १८८४, पृ० ६१–६२।
५ रियाजे तिरहुत, ले० अयोध्या प्रसाद, दूसरा संस्करण, मुजफ्फरपुर, १८६२, पृ० ४४–४५।
६ खजीनतुल अफिया, ले० एम० गुलाम सरवर, नवल किशोर प्रेस, कानपुर, १६१४, दूसरे भाग में पृ० ३३२ और ३५४।

उत्साही और विद्या प्रेमी अंगरेज जिज्ञासुओं, भारत सरकार के पुरातत्व

नवासी]

विभाग एवं डा. लाहा की कृपा से अंगरेजी में तो वैशाली सम्बन्धी कुछ साहित्य तैयार भी हुआ है, मगर हिन्दी में तो वह भी नहीं हो पाया है। कई साल पहले महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'गङ्गा' के 'पुरातत्त्वांक' में 'बसाढ़ की खुदाई' नामक लेख लिखा था। बाबू पारसनाथ सिंह, बी. ए., बी. एल. ने 'वैशाली' शीर्षक लेख लिखा है तथा प्रो० योगेन्द्र मिश्र ने मार्च १६४५ के 'बालक' में 'मेरी वैशाली-यात्रा' नामक लेख लिखा है। श्री नगेन्द्र नाथ वसु द्वारा सम्पादित हिन्दी विश्व कोष की बीसवीं जिल्द (पृ० ३१७-३३३) में लिच्छवियों का वृत्तान्त है। पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित और प्रो० अतुलानन्द सेन ने क्रमश: 'सरस्वती' (१६३६) और 'वैशाली' में लेख लिखे थे। हिन्दी में वैशाली सम्बन्धी साहित्य यहीं तक अथवा कुछ अन्य लेखों तक सीमित है, जो वास्तव में बड़े ही परिताप का विषय है।

यह बात नहीं है कि वैशाली लोगों की कल्पना को न जगा सकी हो। यह नाम बहुत समय से उत्तरी बिहार में प्रिय रहा है। प्रिन्सिपल मनोरंजन की वैशाली पर रचित कविता तुरत ही लोकप्रिय हो गयी। राहुल जी ने 'सिंह सेनापति' नामक उपन्यास हाल ही में लिखा है। स्वर्गीय भुवनेश्वर सिं० 'भुवन' साहित्य सरोज, 'वैशाली' नामक पत्रिका निकालते थे, जिसका हिन्दी-संसार में बहुत सम्मान था। मुजफ्फरपुर के श्रीयुत् रामदेव शर्मा जब प्रकाशन-क्षेत्र में आये, तब आपने अपनी प्रकाशन-संस्था का नाम 'वैशाली निकुञ्ज' रखा। कई संस्थाओं (यथा हाई स्कूल, पुस्तकालय) ने अपने नाम वैशाली पर रखे हैं। फिर भी हिन्दी भाषियों के सम्मुख आज तक वैशाली का इतिहास अथवा इस सम्बन्ध की कोई परिचयात्मक पुस्तक नहीं रखी जा सकी थी। यह 'वैशाली' उसी अभाव की पूर्ति की दिशा में प्रथम प्रयत्न है।

स्थापना सूर्यवंशी राजा विशाल ने की थी। रामायण और कतिपय पुराणों में इसकी वंशावली दी हुई है। राजा दुष्यन्त और उनके पुत्र भरत (जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है) का वैशाली-राजवंश से निकट का सम्बन्ध था।

यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि कब यहां राजतन्त्र का अन्त हो गया और प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। मेरा अनुमान है कि महाभारत युद्ध के पश्चात् जो राजाओं का नाश हुआ था और बहुत से प्रजातन्त्रों की स्थापना हुई थी, उसी युग में वैशाली और विदेह में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई होगी; क्योंकि महाभारत में लिच्छवियों की चर्चा नहीं है। ये मिलकर वृज्जि-संघ या वज्जि-संघ के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज भी थारू लोग चम्पारन के आर्य निवासियों को बजी कहा करते हैं।

उत्तरी बिहार में प्रजातन्त्र एवं संघ-शासन की स्थापना भारतीय इतिहास की एक प्रमुख घटना है। वस्तुतः यहां विचार-स्वातन्त्र्य की प्रधानता रही है और क्रान्ति की ओर लोग सचेष्ट रहे हैं। हमारे इस कथन के प्रमाण आगे के युग में और भी मिलेंगे, जब तीरभुक्ति ने ब्राह्मणों के बढ़ते हुए हिंसावाद पर जैन मत एवं बौद्ध मत द्वारा आक्रमण किया। पश्चिमी विद्वानों का यह कहना कि भारतवर्ष सर्वदा एकतन्त्र शासन का अभ्यस्त रहा है, वास्तव में उनके अज्ञान का ही द्योतक है।

कई कारणों से वैशाली-प्रजातन्त्र का विशेष महत्त्व है। डा० काशी प्रसाद जायसवाल का विचार है कि महात्मा गौतम बुद्ध के बौद्ध संघ का प्रजातन्त्र से प्रारम्भ हुआ था क्योंकि उनका जन्म ऐसे लोगों में हुआ था, जो प्रजातन्त्र का उपभोग करते थे। अतः उन्होंने जिस वर्ग या समाज

---

* देखिये अन्यत्र प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा का लेख।

की स्थापना की थी, उसका नाम भिक्षु-संघ अथवा भिक्खुओं का प्रजातन्त्र रखा था। श्री राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि भिक्षु-संघ के 'छन्द' (वोट) दान तथा दूसरे प्रबन्ध के ढंगों में लिच्छवि-गणतन्त्र का अनुकरण किया गया था।

लिच्छवि-गण तन्त्रबुद्ध को बहुत प्रिय था। उनने भिक्षु-संघ के सामने इसी को आदर्श की तरह पेश किया था। जब मगध के राजा अजातशत्रु की ओर से भेजा हुआ उसका महामन्त्री वर्षकार महात्मा बुद्ध से इस विषय में परामर्श लेने गया था कि वज्जियों, लिच्छवियों और विदेहों पर आक्रमण करना चाहिये या नहीं, तब बुद्ध ने मगध से आये हुए महामन्त्री को नहीं बल्कि अपने सर्व प्रधान शिष्य को सम्बोधन करके जो कुछ कहा था, वह स्वयं उन्हीं के शब्दों में यहां दिया जाता है—

१. हे आनन्द! जब तक वज्जि लोग पूरी पूरी और जल्दी-जल्दी सभाएँ करते हैं;

२. जब तक वे लोग एकमत होकर मिलते हैं, एक साथ मिल कर उन्नति करते हैं और शासन-कार्य एकमत होकर करते हैं;

३. जब तक वे कोई ऐसा नियम नहीं बनाते हैं जो पहले से नहीं चला आता है, जब तक वे किसी निश्चित नियम का उल्लंघन नहीं करते हैं और जब तक वे वज्जियों की प्राचीन काल की स्थापित पुरानी संस्थाओं के अनुकूल कार्य करते हैं;

४. जब तक वे लोग वज्जि वृद्धों की प्रतिष्ठा, आदर, भक्ति और सहायता करते हैं और जब तक वे उनकी बातों को सुनना अपना कर्त्तव्य समझते हैं;

५. जब तक वे अपने समाज की स्त्रियों और बालिकाओं को बल प्रयोग करके अथवा भगा लाकर अपने पास नहीं रखते हैं;

पर आगे चल कर पाटलिपुत्र का विशाल नगर स्थापित हुआ। आपस में फूट डलवा कर अजातशत्रु ने लिच्छवियों पर विजय प्राप्त की और वैशाली को मगध साम्राज्य के अधीन किया।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिच्छवियों की चर्चा की है।

अशोक उसी मार्ग से नेपाल जाता था और रास्ते में पड़ने के कारण वैशाली (आजकल कोल्हुआ) में एक स्तम्भ खड़ा किया जो अभी मौजूद है। उसके लेखों में इस नगरी की चर्चा नहीं है, जिससे प्रतीत होता है कि अन्ततोगत्वा वैशाली को मौर्यसाम्राज्य का अंग होना पड़ा।

बसाढ़ में कदफिस द्वितीय का सिक्का* मिला है जिससे सिद्ध होता है कि वैशाली पर कुशानों का अधिकार हो गया था। तारानाथ ने लिखा है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया और अश्वघोष एवं बुद्ध का भिक्षा-पात्र ले गया। यह भिक्षापात्र वैशाली में रखा था और लिच्छवियों के अधीन था।

किन्तु लिच्छवियों का नाश तब भी नहीं हुआ। ईसा की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में हम एक लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी का विवाह चन्द्रगुप्त प्रथम से होता पाते हैं जिसके फलस्वरूप गुप्त राजवंश की स्थापना होती है। समुद्रगुप्त अपने सिक्कों पर अपने को लिच्छवि-दौहित्र बतला कर गर्व का अनुभव करता है। बसाढ़ की खुदाई† में गुप्त युग की बहुत सी मुहरें मिली हैं।

इसके बाद लिच्छवियों का नाम नहीं सुन पड़ता। गुप्त साम्राज्यवाद

---

* देखिये अन्यत्र 'बसाढ़ में प्राप्त सिक्के' शीर्षक लेख।

† देखिये अन्यत्र श्री राहुल सांकृत्यायन का लेख।

अथवा हूणों ने उनका नाश किया होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

राजनीतिक इतिहास के बाद हम धार्मिक इतिहास पर विचार करेंगे।

जैनधर्म में वैशाली का महत्त्व इसी से सिद्ध है कि उसके प्रवर्तक अथवा चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर* का जन्म यहीं हुआ था, जिस कारण वे 'वैशालीय' भी कहे जाते हैं।

बौद्ध धर्म में भी इस नगरी के लिये महान् गौरव है। बुद्ध यहां तीन बार पधारे थे। यहीं उनने स्त्रियों को भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया था। यहां आम्रपाली† नामक वेश्या भी उनकी शिष्या बन गयी थी जिसने अपना सारा जीवन पुण्य-कार्य में लगा दिया। यहीं बुद्ध ने अपना अन्तिम वर्षावास किया था तथा कुशीनगर जाते समय वैशाली में ही अपने आनेवाले निर्वाण की सूचना लोगों को दी थी। लिच्छवियों को बुद्ध इतने प्यारे थे कि यह सूचना पाकर लिच्छवि फूटफूट कर रोने लगे और उनके पीछे पीछे चलने लगे। अन्त में बुद्ध ने उन्हें अपना भिक्षापात्र दिया और स्वयं एवं लिच्छवियों के बीच में एक ऐसा जलाशय बना दिया जो आसानी से पार न किया जा सके। तब कहीं लिच्छवि लौटे और एक मन्दिर बना कर उसमें बुद्ध का भिक्षापात्र प्रतिष्ठित किया। यह वही भिक्षापात्र है जिसे आगे चलकर कनिष्क गान्धार ले गया। फाहियान ने बुद्ध के भिक्षापात्र को गान्धार में देखा था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् जब उनके देहावशेष के आठ भाग हुए, तब उनमें से एक भाग लिच्छवियों

---

*देखिये अन्यत्र 'वैशाली की दिव्य विभूति' शीर्षक लेख।

† पण्डित मथुरा प्रसाद दीक्षित (पिरारी, डा. शाहपुर सुतिहार, सारन) मुझे सूचित करते हैं कि उनने आम्रपाली की एक बहुत अच्छी तस्वीर प्रयाग म्युनिसिपल म्यूजियम में देखी है।

को मिला। उस पार्थिव पदार्थ को बड़ी धूमधाम से लाकर उनने उसके ऊपर एक बड़ा स्तूप खड़ा किया। बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द के आधे चिताभस्म* पर लिच्छवियों ने जो स्तूप बनवाया था, वह अभी भी कोल्हुआ में अशोक-स्तम्भ के उत्तर वर्तमान है, जिस पर आधुनिक युग का बना एक मन्दिर है।

बुद्ध के मरने के सौ वर्ष बाद वैशाली के वालुकाराम में द्वितीय धर्म-संगीति (धर्म-सभा) हुई थी, जिसका उल्लेख त्रिपिटक एवं महावंश में है। इसमें सात सौ विद्वान् भिक्षु एकत्रित हुए थे।

वैशाली की महत्ता से आकृष्ट होकर दोनों प्रसिद्ध चीनी यात्री—फाहियान और हुएन-सांग†—यहां पधारे थे। उनने अपने यात्रा विवरणों में इस नगरी का वर्णन किया है।

संक्षिप्त इतिहास और जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म में वैशाली का महत्वपूर्ण स्थान दिखलाने के बाद हम वैशाली के इतिहास के तीसरे युग—उत्तर हिन्दू युग—पर विचार करेंगे।

इस युग में बिहार पाल राजाओं के अधीन था, जिनकी राजधानी आधुनिक बिहार शरीफ में थी। ये राजा बौद्ध और कला-प्रेमी थे; अतः सारे बिहार प्रान्त में इस युग की बनी सुन्दर मूर्तियां पायी जाती हैं। बसाढ़ और कोल्हुआ में भी ऐसी मूर्तियां मिली हैं। बसाढ़ में मिली मूर्तियां वहां के बावन पोखर के उत्तरी भीटे पर स्थित मन्दिर में रखी हैं। इनमें शिव-पार्वती और गणेश की मूर्तियां भी हैं। कोल्हुआ में अशोक-स्तम्भ

---

*देखिये अन्यत्र पृ० ३४, ४७, ४८, ५६।

† फाहियान और हुएन-सांग के वैशाली-वर्णन अन्यत्र प्रकाशित हैं।

के उत्तर आनन्द के अर्धांग-स्तूप पर बने मन्दिर में बुद्ध की एक विशाल मूर्ति रखी है, जिसकी वेदी के नीचे लेख† भी खुदा है। २८ जनवरी १६४५ ई० को जब इन पंक्तियों का लेखक 'राजा विशाल का गढ़' देखने बसाढ़ गया था, तब उसने हाल में मिली एक दुर्गा की मूर्ति देखी थी। यह पाल युग की कृति मालूम पड़ती थी।

पालयुग की एक दूसरी कृति पूर्वी बंगाल के टिपरा नामक स्थान में मिली है जिसका वैशाली की कृतियों से पूर्ण साम्य है। यह मिट्टी की एक मुहर (clay seal) है जिसका व्यास चार इञ्च से कुछ अधिक है। इस पर लक्ष्मी की मूर्ति है। दोनों ओर दो सेवक गोल पात्रों से कुछ तरल पदार्थ अर्पित करते दीख पड़ते हैं। सेवकों के ऊपर दो हाथी लक्ष्मी की वन्दना कर रहे हैं। नीचे प्रारम्भिक गुप्त युग (चौथी या पांचवीं सदी) की लिपि में लिखा हुआ है—"कुमारामात्याधिकरणस्य"। लक्ष्मी की मूर्ति की बायीं ओर एक दूसरी छोटी मुहर की छाप है, जिसका व्यास करीब पौन इञ्च है। इस पर वराह का चित्र है और नवीं या दसवीं सदी (पाल युग) की लिपि में लिखा है—"श्री लोकनाथस्य"। यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि इस प्रकार की मुहरें (जिन पर लक्ष्मी की मूर्ति है और कुछ लेख भी अंकित है) बसाढ़ में बहुतायत से मिली हैं। इस मुहर पर लक्ष्मी की मूर्ति गुप्त युग की है, पर इस पर जो दूसरी छोटी मुहर की छाप है उसकी वराह-मूर्ति पाल-युग की है। सम्पूर्ण मुहर पालयुग के एक ताम्रपत्र से जुड़ी हुई है।

हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों के पाये जाने से मालूम पड़ता है कि धीरे-धीरे वैशाली में हिन्दू धर्म का प्रभाव भी बढ़ रहा था और यह प्रभाव

---

† देखिये पृ० ६०

निमामवे]

पूर्व में टिपरा तक दीख पड़ता है।

अगले युग–मुसलिम युग–में इस्लाम ने भी अपना पैर इस ओर बढ़ाया और इस्माइल के अधिनायकत्व में मनेर से घनेरों प्रचारक आकर निरहुत में इस्लाम का प्रचार करने लगे। मुसलमानी सल्तनत कायम होने से इस कार्य में बड़ी सुविधा हुई और धर्म के साथ संस्कृति का प्रसार भी होने लगा। विशेषकर हाजीपुर सब-डिविजन में तो (जिसमें बसाढ़ है) स्थानों के भी नाम परिवर्तित कर मुसलमानी रखे गये। जनवरी १=६१ के 'कलकत्ता रिव्यू' में मिस्टर क्रिस्चियन ने लिखा है कि हाजीपुर सब-डिविजन के ६५ प्रतिशत स्थानों के नाम मुसलमानी उद्गम के हैं। हाजीपुर का नामकरण हाजी इलियम ने अपने नाम पर किया था, जो चौदहवीं सदी के उत्तरार्ध में यहां का स्वतन्त्र सूबेदार था। पन्द्रहवीं सदी में बसाढ़ में शेख काजिन (१४३४-६५) नामक एक प्रसिद्ध सन्त इस्लाम के प्रचारार्थ आये थे जिनकी दरगाह† अभी भी वहां मौजूद है।

इस प्रकार अरब में जो स्थान जेरूसलेम का है, वही स्थान वैशाली का बिहार या भारत में है; क्योंकि यह भी एक धर्मप्रवर्तक (महावीर) की जन्म-भूमि है, दूसरे धर्मप्रवर्तक (बुद्ध) की प्रिय भूमि है तथा अन्य धर्मों के साथ भी इसका नाम जुड़ा हुआ है—यथा हिन्दुओं के आराध्यदेव राम वैशाली आये थे और मुसलिम संत शेख काजिन की दरगाह यहां है जिस पर आज-कल भी रामनवमी को मेला लगा करता है। दरगाह पर रामनवमी में मेला लगा करना धार्मिक मेलजोल का अच्छा उदाहरण है, जिसके लिये वैशाली सदैव प्रसिद्ध रही है।

---

† देखिये अन्यत्र मेरा 'वैशाली के भग्नावशेष' शीर्षक लेख।

[पी

एक दूसरी घटना का समय भी मैं मुसलिम-युग ही अनुमान करता हूँ। वह घटना है ब्राह्मणों के एक दल का पश्चिमी भारत एवं 'मध्यदेश' छोड़ कर पूर्व की ओर बढ़ना और छपरा, बसाढ़ तथा बिहार के अन्य भागों में बस कर भूमि को अपनी जीविका का प्रधान साधन बनाना। मैं समझता हूँ कि मुसलमानों के आक्रमणों से तंग आकर तथा उनके द्वारा हटाये जाने पर ये पूर्व की ओर बढ़ते गये। अतः आजकल भी कहीं-कहीं ये ब्राह्मण 'पछिमा' (पश्चिमीय=पश्चिम से आये हुए) कहे जाते हैं। इन पश्चिमीय ब्राह्मणों का एक समूह-विशेष छपरा जिले में स्थित 'जयस्थल' डीह पहुँचा और धीरे धीरे गण्डक नदी पार कर बसाढ़ के आसपास भी बस गया। पीछे चल कर पछिमा ब्राह्मणों का यह समूह-विशेष जयस्थल डीह से आने के कारण जेथरिया कहलाने लगा। श्री राहुल सांकृत्यायन* का विचार है कि बसाढ़ के आसपास बसे जेथरिया प्राचीन लिच्छवियों के वंशज हैं। अपने पक्ष के समर्थन के लिये आपने ज्ञातृ (प्राचीन लिच्छवियों की एक शाखा) का अपभ्रंश जेथरिया सोच निकाला है, जो वास्तव में 'जयस्थलीय' का अपभ्रंश है; क्योंकि महावीर को प्राचीन ग्रंथों में ज्ञातृपुत्र या नातपुत्त कहा गया है; तब फिर नात से जेथरिया† अपभ्रंश कैसे सम्भव हो सकता है?

मुसलिम-युग में उपर्युक्त दो घटनाएँ—इस्लाम का प्रचार और पश्चिमीय ब्राह्मणों का पूर्व की ओर बढ़ना—घटीं जिनका बसाढ़ से विशेष सम्ब-

---

* अन्यत्र 'बसाढ़ की खुदाई' देखिये।

†बहुत दिन हुए प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा, एम. ए. ने, जिन्हें राहुलजी ने अपनी पुस्तक 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' के 'ज्ञातृ=जेथरिया' नामक लेख में 'श्री ज० श०' लिखकर उनका नाम छिपाना चाहा है, राहुल जी का उत्तर दिया था।

न्ध है। इस युग के बाद हम वैशाली के इतिहास के पांचवें युग—आधुनिक युग-में पहुँचते हैं, जब इसके प्राचीन गौरव की ओर पहले पाश्चात्य और फिर पूर्वीय विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है।

यों तो कोल्हुआ के अशोक—स्तम्भ पर "जी० एच० बार्लो, १७८०" और "रिउबेन बरो, १७९२" खुदे हुए हैं, किन्तु विद्वन्मण्डली का ध्यान इस ओर आकर्षित करने वाले सेंट मार्टिन और स्टिफेन्सन थे। स्टिफेन्सन ने १८३५ ई० में इस स्थान की यात्रा की और सर्वप्रथम लोगों का ध्यान इस ओर खींचा। टर्नर के लेखों में (१८३८ ई०) भी लिच्छवियों की चर्चा हुई। इसके बाद जनरल कनिंगहम ने दो बार (१८६०-६१ और १८८०-८१ में) बसाढ़ की यात्रा की और इसे प्राचीन वैशाली घोषित किया। कनिंगहम के साथ १८८० ई० में मिस्टर गैरिक भी वहां गये थे। डा० विन्सेण्ट स्मिथ ने वैशाली और लिच्छवियों पर लेख* लिखे। फलस्वरूप १९०३-४ तथा १९१३-१४ में यहां भारतीय पुरातत्त्व-विभाग की ओर से क्रमशः डा० ब्लॉश और डा० स्पूनर द्वारा खुदाई हुई और बहुत सी चीजें निकलीं, जो इण्डियन म्यूजियम (कलकत्ता) और पटना म्यूजियम में रखी हैं। मुहरों, (seals) सिक्कों† (coins) आदि के अतिरिक्त यहां बहुत सी मृत्तिकाखण्ड (terracotta) अथवा धातुखण्ड (धातु की टिकियाओं tablets) पर बनी मूर्तियां मिली हैं, जिनमें कई तो अत्यन्त ही मनोमुग्धकारिणी हैं। इन में एक मृत्तिकाखण्ड पर बनी सुन्दर मूर्ति है। यह खड़ी है। इसके हाथ कमर के कुछ पीछे हैं। पोशाक बहुत ही कम

---

*देखिये अन्यत्र 'वैशाली सम्बन्धी साहित्य' शीर्षक लेख।

†देखिये अन्यत्र 'बसाढ़ की खुदाई' और 'बसाढ़ में प्राप्त सिक्के' शीर्षक लेख जिनमें बसाढ़ में मिली मुहरों और सिक्कों पर विचार किया गया है।

[एकसौ दो

और पुराने ढंग की है। मूर्ति बड़े और गोल कर्णाभूषण पहने है। इसके पंख भी हैं। पृष्ठभूमि पर फूल-पौधों के चित्र हैं। यह मौर्य युग की कही जाती है। इस मूर्ति के पंख बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और ऐसा मालूम पड़ता है, मानो इस पर मेसोपोटामिया की कला का प्रभाव पड़ा हो। इस प्रभाव से वैशाली का विशाल अन्तर्देशीय सम्बन्ध मालूम पड़ता है। पूर्व में बोरूबदूर से इसके घनिष्ठ सम्बन्ध की चर्चा तो मैं कर ही चुका हूं।

इस स्थान पर मैं बसाढ़ में मिली दो पत्थर की टिकियाओं (stone tablets) और उन पर बने सुन्दर चित्रों के सम्बन्ध में भी कहना चाहता हूं। इनमें पहली टिकिया पर वृत्त के अन्दर एक वर्ग दिखलाया गया ह। यह वर्ग भी एक आड़े चिह्न (cross) द्वारा चार छोटे वर्गों में बांटा गया है जिनमें दो में मीनयुग्म दिखलाये गये हैं; शेष दो सेण्ट एण्ड्र के क्रौस के आकार के हैं। स्मरण रहे कि मछलियां भारत में बहुत पहले से मङ्गल-सूचक मानी गयी हैं और विष्णु का मत्स्यावतार तो प्रसिद्ध ही है। दूसरी टिकिया में वक्ररेखाओं के बीच पुष्प दिखलाये गये हैं। पुष्प में छः पंखुड़ियां हैं। इस टिकिया का मध्य भाग घिस गया था। मालूम पड़ता है लोग इस पर अपने चाकू तेज करते थे। कलाकार द्वारा टिकिया के ऊपर का चित्र सुधरवा लिया गया है। वक्ररेखाओं का स्थान इस प्रकार रखा गया है कि प्रत्येक पुष्प के चारो ओर छः वक्ररेखामण्डल हैं—हर पंखुड़ी के सामने एक वक्ररेखामण्डल है। केन्द्रस्थ पुष्प के चारो ओर पुष्पों के तीन वृत्त हैं—समीपतम वृत्त में छः और दूसरे तथा तीसरे में बारह-बारह पुष्प हैं। इस प्रकार कुल ३१ पुष्प हैं। तीसरे वृत्त में पुष्पों का आधा भाग ही दीख पड़ता है। वक्ररेखामण्डलों की संख्या ६+१८+१८=४२ है; चारो ओर से १२ अर्धमण्डल भी हैं। यह टिकिया

[कसौ तीन]

(यां पट्टी) बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे भारत में चक्राकार अलङ्करण के अस्तित्व का पता चलता है। इसका समय गुप्तयुग है। चित्र वस्तुतः कलापूर्ण है।

वैशाली की इसी कला और महत्ता ने सन् १९४४ ई० में हाजीपुर के विद्यानुरागी सब-डिविजनल अफसर श्री जगदीशचन्द्र माथुर*, आई. सी. एस. का ध्यान आकर्षित किया। आपने देखा कि वैशाली जैसा प्रतीक रहने पर भी बिहार के गांवों में कोई सांस्कृतिक जाग्रति नहीं है— वस्तुतः लोग उसे भूल ही गये हैं। अतः आपने 'वैशाली-महोत्सव' का आयोजन किया जिससे विद्वानों और जन समुदाय की अभिरुचि इस ओर हुई है। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के वर्तमान डाइरेक्टर-जनरल डा० आर० ई० मार्टिमर व्हीलर ने अपने पत्र में माथुर साहब को लिखा है कि निकट भविष्य में वैशाली में पुनः खुदाई शुरू की जायगी जिससे उसके लुप्त इतिहास पर प्रकाश पड़ सके।

वैशाली का भविष्य उज्ज्वल है। ज्यों ज्यों भारत में प्रजातन्त्र का विकास होता जायगा, त्यों त्यों इसका महत्त्व भी बढ़ता जायगा। हमारी भविष्य की सन्तान, जो प्रजातन्त्र की अनन्य भक्त होगी, निश्चय ही वैशाली को अपनी तीर्थभूमि मानेगी और उसी श्रद्धा से इसके दर्शन करेगी, जिस श्रद्धा से पुरातन युग में फाहियान और हुएनसांग ने इसकी यात्रा कर अपने जीवन को धन्य समझा था।

---

* देखिये अन्यत्र उनका लेख।

मिट्टी की मुहर : पार्षदों के साथ लक्ष्मी

प्राप्तिस्थान— टिपरा (पूर्व बंगाल)

समय— गुप्तयुग (छोटी मुहर का समय पालयुग)

विशेष विवरण— पृष्ठ ६६ देखिये
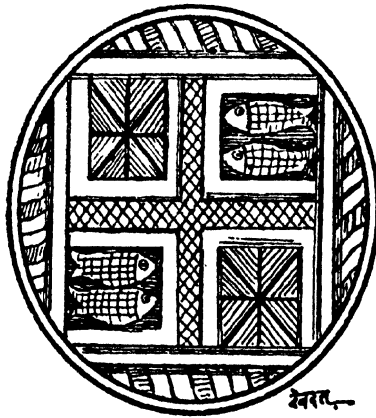
[भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से प्राप्त]

पत्थर की टिकिया : मीनयुग्म

प्राप्तिस्थान — बसाढ़

समय— गुप्त युग

विशेष विवरण— पृष्ठ १०३ देखिये

[भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से प्राप्त]
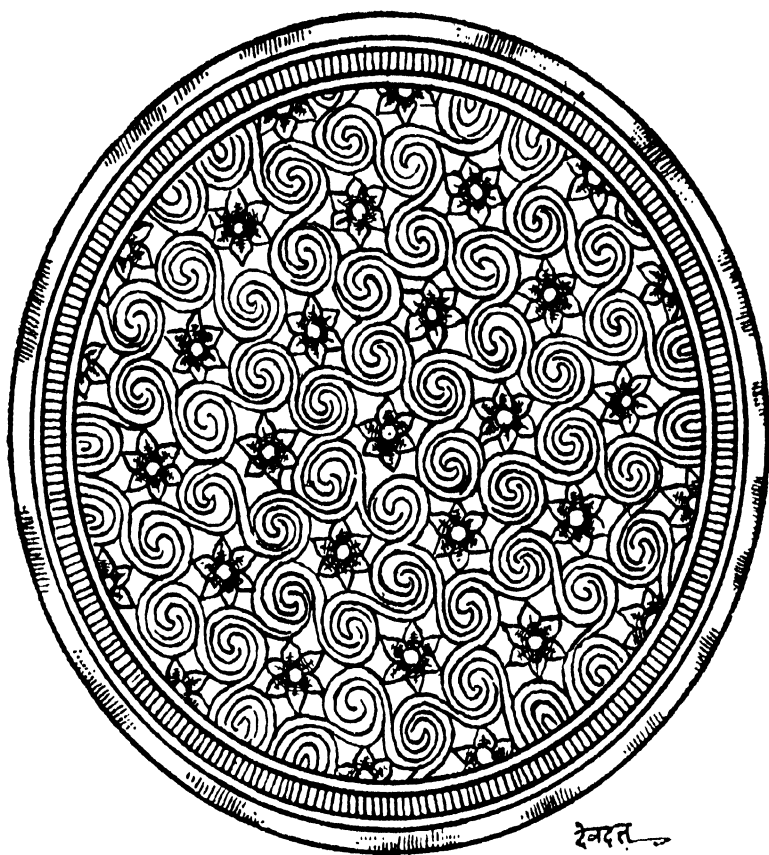
पत्थर की टिकिया : चक्राकार अलङ्करण

प्राप्तिस्थान--- बसाढ़

समय--- गुप्त युग

विशेष विवरण--- पृष्ठ १०३ देखिये

[भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से प्राप्त]

वैशाली गौरव

(एकांकी नाटक)

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव
अध्यापक
जिला स्कूल, मुजफ्फरपुर

[वैशाली महोत्सव के अवसर पर, ३१-३-४५ को, प्रो० नवलकिशोर गौड़, एम० ए० की लगन, उत्साह और परिश्रम के फलस्वरूप जी० बी० बी० कॉलेज के विद्यार्थी यह अभिनय उपस्थित कर रहे हैं। प्रस्तुत नाटक रचना में गौड़जी ने जो सहायता की है, उसके लिये जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिए लेखक आभारी है]

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र—		अभिनेता
१	*सिंह-(सेनापति)* —	श्री रामसेवकप्रसाद वर्मा
२	*अजित (एक लिच्छवि)* —	श्री अमरनाथ
३	*गण-पति* —	श्री यादवचन्द्र पाण्डेय
४	*गण-गणक* —	श्री युगल
५	*गण—(१)* —	श्री मनोज मोहन
६	*गण—(२)* —	श्री अंगद प्रसाद श्रीवास्तब
७	*अग्निवेश (वैद्य)* —	श्री श्रद्धानन्द शर्मा
८	*सुमन (वृद्ध सेनापति)* —	श्री जनकनन्दन प्रसाद वर्मा
९	*पुष्प (सेना-नायक)* —	श्री सत्यरंजन बिहारी सहाय
१०	*गौतम बुद्ध* —	श्री हरि प्रसाद सिंह
११	*आनन्द* —	श्री हरिहर प्रसाद सिंह
१२	*सारिपुत्र* —	श्री जनार्दन प्रसाद सिंह

स्त्री-पात्र—

१ *रोहिणी (सिंह की पत्नी)*— अखौरी धरणीधर

२ *माणविका (अग्निवेश की पत्नी)*—श्री दयानन्द प्रधान

३ *क्षेमा (एक लिच्छवियानी)*— श्री शम्भुनाथ

४ *सेविकायें*—सर्व श्री राजेश्वर शरण, दया नारायण, विनोद विहारी

दो शब्द

प्रस्तुत एकांकी नाटक की कल्पना का श्रेय वैशाली-महोत्सव के संयोजकों को है--विशेषतः श्री जगदीशचन्द्र माथुर आई० सी० एस० की प्रेरणा से, वैशाली के ऐतिहासिक गौरव और उसके सांस्कृतिक महत्त्व को रंगमंच पर प्रदर्शित करने की यह कल्पना इस रचना में साकार हो सकी है।

वैशाली के ऐतिहासिक पृष्ठाधार पर किसी नाटक की रचना करने के पूर्व यह समस्या उठ खड़ी हुई कि उसके किस पहलू पर इसमें प्रकाश डाला जाए—महावीर तीर्थंकर और जैन धर्म से संबद्ध इतिहास का उपयोग किया जाए या गौतम बुद्ध और वैशाली के सम्बन्ध की कोई घटना ली जाए। इसी प्रसंग में अम्बपाली और गौतम बुद्ध की प्रसिद्ध कथा को नाटकीय रूप देने की भी चर्चा हुई। इनके अतिरिक्त वैशाली के राजनीतिक इतिहास की कई घटनाएँ भी नाटकीय कथा-वस्तु के उपयुक्त थीं। किन्तु हमें तो वैशाली के उन आदर्शों की एक झलक दिखलानी थी जो आधुनिक जीवन के लिए भी प्रेरणा का संदेश दे सके। हम अपने अतीत को प्रदर्शन मात्र नहीं, वरन वर्त्तमान के लिए प्रेरणा के रूप में उपस्थित करना चाहते थे। इसी लिए, वैशाली के सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन के कुछ चित्रों को एक सम्बद्ध कथा-वस्तु का रूप देकर, इस एकांकी नाटक में उपस्थित किया गया है। यद्यपि इस कथा-वस्तु का मूल आधार श्री राहुल सांकृत्यायन-लिखित पुस्तक 'सिंह सेनापति' है, किन्तु फिर भी, ऐतिहासिक कथा को कलापूर्ण नाटकीय रूप देने में इसके लेखक को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इसे नाट्य-कला के पारखी ही समझ सकते हैं।

इस नाटक की रचना बड़ी संकीर्ण परिस्थिति में हुई है। नाटक के उपयुक्त विषय का निर्वाचन होते-होते इतना विलम्ब हो गया कि इसके लेखक को केवल दो-तीन दिनों में ही इसे समाप्त करना पड़ा। कलाकार से किसी निश्चित अवधि के भीतर, खास 'पैटर्न' या 'डिजाइन' की रचना प्रस्तुत करने का आग्रह करना, कला का अपमान है; किन्तु यदि किसी विशेष परिस्थिति

में ऐसा दुराग्रह करना ही पड़े, और वह कलाकार एक कलापूर्ण रचना प्रस्तुत कर दे, तो निस्सन्देह उस रचना का मूल्य बहुत अधिक बढ़ जाता है। श्रीसूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव ने अपनी इस रचना में, साहित्य-कला एवं रंगमंच संबंधी अपने परिज्ञान का जो परिचय दिया है, वह निस्सन्देह अभिनन्दनीय है।

इस नाटक में प्राचीन वैशाली के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के अनुरूप, पात्रों के आचार-व्यवहार और कथोपकथन में ऐतिहासिकता के पूर्ण निर्वाह की चेष्टा की गई है। नाटक के पात्रों और उनके वातावरण से परिचय प्राप्त करने के लिए, इसमें आए हुए कुछ विशेष शब्दों को स्पष्टत: समझ लेना चाहिए। 'गण-सन्निपात' लिच्छवि-गणतंत्र की सर्वश्रेष्ठ परिषद् थी जिसके प्रधान 'गण-पति' कहलाते थे। इस परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन का दृश्य इस नाटक में दिखलाया गया है। 'भन्तेगण' गण-सन्निपात के सदस्यों के लिए आदर-सूचक सम्बोधन है। 'कर्मान्त' तत्कालीन जन-जीवन में कृषि-क्षेत्र के लिए व्यवहृत होता था। वैशाली की तरह सप्तसिंधु के 'गांधार' प्रदेश में भी गणतंत्र-प्रणाली प्रचलित थी जिस पर 'पार्शव' जाति (फारस की जाति) ने आक्रमण किया था और जिस युद्ध में, तक्षशिला में सैनिक-शिक्षा प्राप्त करनेवाले लिच्छवि-प्रतिनिधि सिंह ने अपूर्व वीरता दिखलाई थी। 'उल्काचेल' तो आधुनिक हाजीपुर है, जो मगध-वैशाली-युद्ध में लिच्छवि-सेना की पृष्ठभूमि था।

इस नाटक को रंगमंच पर प्रदर्शित करने का श्रेय जी० बी० बी० कालेज के उत्साही छात्रों को है। इतने कम समय में नाटक का अभिनय उपस्थित करने के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस नाटक ने रंगमंच पर अभिनेता के रूप में उन्हें उतारा है। जिन पात्रों का उन्होंने यहां अभिनय किया है, उनके आदर्शों से प्रेरित होकर, यदि उनके दर्शक और वे स्वयं जीवन के रंगमंच पर भी उपस्थित हो सकें, तो इस रचना का उद्देश्य पूर्ण हो जाए।

हिन्दी-विभाग
जी० बी० बी० कालेज
मुजफ्फरपुर।

नवलकिशोर गौड़

दृश्य—१

[वैशाली के नर-नारियों का समूह; सम्मुख तक्षशिला से सैनिक शिक्षा प्राप्त कर लौटा हुआ लिच्छवि तरुण सिंह और उसकी बायीं ओर उसकी गांधारी पत्नी रोहिणी; सिंह की दाहिनी ओर बैठे हुए पुरुषों की पंक्ति और रोहिणी की बायीं ओर बैठी हुई स्त्रियों की पंक्ति; एक लिच्छवियानी का आरती के साथ मूक नृत्य, स्त्रियों का तदनुरूप स्वागत गान, नेपथ्य में वाद्य।]

गान

आज अपने गौरव की आरती उतारोरी
आज किसी के शुभ दर्शन से
मन के मंजुल फूल खिले हैं
मुर्झायी जीवन-लतिका को
मधुऋतु के वरदान मिले हैं
आज अपने आनन्द के दीपक सँवारोरी
आज अपने गौरव की आरती उतारोरी

दृश्य—२

[स्थान— वैशाली का पथ—अजित और अन्य दो गण का बार्त्तालाप करते हुए प्रवेश ।]

अजित—तुम निश्चित रूप से जानते हो, सिंह निर्वाचित होना नहीं चाहता ?

गण १— नहीं चाहता यह बात नहीं है, किन्तु वह तुम्हारे विरोध में खड़ा होना नहीं चाहता था । बराबर कहता था कि अजित मेरा भाई है, उसके विरोध में मैं क्यों निर्वाचित होऊँ ? किन्तु सेनापति सुमन ने समझा बुझाकर चुप कर दिया ।

अजित— सेनापति सुमन ! मेरे मामा सुमन ! (सोचता हुआ) नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता ! व. तो निश्चय ही मुझे चाहेंगे ।

गण १— उनका कहना है कि इस समय जब कि हमारे गण पर भारी संकट आया है, सदस्यता से विमुख होना सिंह का स्वार्थ-त्याग नहीं, बल्कि लिच्छिवियों के प्रति कर्त्तव्य विमुख होना होगा । उनका विश्वास है, सिंह बड़ा ही योग्य व्यक्ति है और इस समय जबकि शत्रुओं का आक्रमण हमारे गण-तन्त्र पर हो रहा है, उसकी हमें आवश्यकता है ।

अजित— किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता ।

गण २— जाने भी दो । सेनापति सुमन के हाथ में ही सभी छन्द तो हैं नहीं । वज्जी के सभी गण, तुम्हारे कर्मान्त, तुम्हारे पशु तुम्हारे ऐश्वर्य का लोहा मानते हैं । फिर वह अधिक से अधिक छन्द तुम्हें ही देंगे ।

गण १— भाई मुझे ठकुरसुहाती बात नहीं आती । हमारे गण-तन्त्र की यही तो विशेषता है कि कर्त्तव्य के सामने हम व्यक्तित्व

से आंखें मूंद लेते हैं। लिच्छवि हित के सामने किसी भी व्यक्ति का त्याग कर सकते हैं। हमारे लिये देश-हित पहले है, व्यक्ति पीछे।

गण २— अच्छा-अच्छा। चलो देख ही लो, गण संस्था का निर्णय क्या होता है।

(प्रस्थान)

दृश्य—३

स्थान—वैशाली का संस्थागार

[गण सन्निपात। सम्मुख मंच पर बैठे हुए गणपति, उनके दक्षिण पार्श्व में प्रधान सेनापति सुमन, गणतन्त्र के अन्य पदाधिकारी, दक्षिण के अन्तिम पार्श्व के समीप बैठे हुए अजित और सिंह, रंगमंच के बाम-पार्श्व में बैठे हुए गण, अंतिम पार्श्व के समीप गण गणक, हाथ में काली-लाल डालियों में काले और लाल छन्द शालाकाएँ।]

गणपति—भन्तेगण! सुनें, आज गणसन्निपात जिस काम के लिए हुआ है, उसका आपको पता है। हमें ज्ञातकुल के रिक्त स्थान के लिए एक सदस्य चुनना है, सदस्यता के उम्मेदवारों के नाम बतलाने के पहले मैं गण के सामने यह निवेदन करना चाहता हूँ कि लिच्छवियों के ऊपर इस समय कैसा महान् संकट आया है, इसे दृष्टि में रखकर हमें अपनी संस्था को सुदृढ़ और अधिक शक्तिशाली बनाना है, यह विचार सदा ध्यान में रखकर सदस्य निर्वाचन करना चाहिए, सदस्यता के लिए हमारे सामने दो नाम

आये हैं-सिंह और अजित; दोनों ही ज्ञात कुल के हैं, दोनों आपके परिचित हैं। पहले मैं आयुष्मान गण गणक से जानना चाहता हूँ कि आज के सन्निपात में कितने सदस्य आये हैं?

गणगणक—भन्ते गणपति! आज के सन्निपात में ८७२ सदस्य वर्तमान हैं।

गणपति—भन्तेगण! कोई सदस्य पागल तो नहीं हैं, हों तो पास वाले आयुष्मान सूचित करें (रुक कर) गण चुप हैं, इससे मैं धारण करता हूँ कि गण में कोई पागल नहीं हैं। यदि कोई सुरामत्त हो तो पासवाले आयुष्मान सूचित करें। (ठहर कर) गण चुप हैं, इससे मैं धारण करता हूँ कि यहां कोई सुरामत्त नहीं है। (लाल काली दो शलाकाओं को हाथ में लेकर) भन्ते गण! ये लाल और काली दो शलाकायें हैं जिनमें लाल, हां-अर्थात स्वीकार के लिये है और काली नहीं-अर्थात अस्वीकार के लिये। शलाका ग्रहायक दो अलग-अलग डालियों में दोनों तरह की ८७२ शलाकायें लेकर आप के पास पहुँचेंगे।

भन्तेगण! मैं पहिले आपके सामने आयुष्मान सिंह का नाम उपस्थित करता हूँ। जो गण अपना छन्द आयुष्मान सिंह को देना चाहते हैं वे लाल शलाकाओं में से एक लें और जो नहीं देना चाहते हैं, वे काली शलाकाओं में से एक। अब आप चुपचाप शलाका ग्रहण करें।

(शलाका ग्रहायक दोनों रंगवाली शलाकायें देते हैं)

भन्तेगण! छन्द शलाका बँट चुकी। जिस आयुष्मान को शलाका नहीं मिली, अधिक मिली या गड़बड़ मिली हो, वह बोलें (रुककर) गण चुप हैं, इससे मैं धारणा करता करता हूँ

कि सभी आयुष्मानों को शलाका ठीक मिली है। (शलाकायें गिनकर) भन्तेगण सुनें! मेरे पास बचकर आयी छन्द शलाकाओं में लाल पांच और काली ८६७ हैं। जिसका अर्थ है आपमें ८६७ ने आयुष्मान सिंह को अपना छन्द दिया और पांच ने उनके विरुद्ध। कोई आयुष्मान तटस्थ न रहा, अब आपके पास शलाका सहायक आयुष्मान जा रहे हैं, आप अपनी शलाकायें लौटा दें। (शलाकायें लौट आने पर) भन्तेगण, आयुष्मान अजित का नाम मैं आपके सामने उपस्थित करता हूँ। जो गण अपना छन्द आयुष्मान अजित को देना चाहते हैं, वह लाल शलाकाओं में से एक ले लें और जो नहीं देना चाहते वे काली शलाकाओं में से एक।

(शलाकाएँ बँट जाने पर) भन्तेगण! जिस आयुष्मान को शलाका न मिली, अधिक मिली, गड़बड़ मिली हो वह बोलें। (रुककर) गण चुप है इससे मैं धारण करता हूँ कि सभी आयुष्मानों को शलाका ठीक मिली है। मेरे पास बचकर आई छन्दशलाकाओं में काली एक भी नहीं और लाल ८७२ हैं, जिसका अर्थ है आपमें से किसी ने आयुष्मान अजित के पक्ष में अपना छन्द नहीं दिया, अब आपके पास शलाका सहायक आयुष्मान जा रहे हैं, आप अपनी शलाकायें लौटा दें। (शलाकायें लौट जाने पर) यह गणसन्निपात आयुष्मान सिंह को, अपना सदस्य स्वीकार करता है।

अजित— (आनन्दविह्वल गले मिलकर) भाई सिंह, साधुवाद! छन्द योग्यतम व्यक्ति के पास गया इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

आज मेरे यहां संध्या का निमन्त्रण भाभी समेत स्वीकार करें। ज्ञातृकुल की तरुण-तरुणियों का यूथ नृत्य हो।

सिंह-- स्वीकार है भाई अजित !

गणपति--भन्तेगण ! आज लिच्छिवियों को जिस व्यक्ति की आवश्यकता थी उसे चुनकर आपने अपनी गुण-ग्राहकता का जो परिचय दिया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ। आयुष्मान सिंह लिच्छवि प्रतिज्ञायें लें।

(सिंह का सम्मुख आना)

भन्तेगण ! आयुष्मान सिंह लिच्छिवि प्रतिज्ञायें ले रहे हैं। (सिंह का खड़े होकर प्रतिज्ञायें लेना)

गणपति--मैं लिच्छविगण के लिये जिऊंगा, लिच्छविगण के लिये मरूँगा।

सिंह -- मैं लिच्छविगण के लिये जिऊंगा, लिच्छविगण के लिये मरूँगा।

गणपति--गण सन्निपात जो कुछ निर्णय करेगा, वह मुझे सर्वदा मान्य होगा

सिंह-- गण सन्निपात जो कुछ निर्णय करेगा, वह मुझे सर्वदा मान्य होगा।

गणपति--मैं प्राचीन काल से चली आई लिच्छवि मर्यादाओं का पालन करूंगा।

सिंह-- मैं प्राचीन काल से चली आई लिच्छवि मर्यादाओं का पालन करूंगा।

सुमन-- (उठकर) भन्तेगण ! योग्य निर्बाचन के लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। आयुष्मान सिंह ने पार्शव युद्ध में तक्षशिला की ओर से सेना-नायक के रूप में जो कार्य्य किया है, हमें बिदित है। आयुष्मान सिंह जैसा सेना-संचालक पा कोई भी देश गौरवान्वित हो सकता है। सेनानायक सिंह ने वहां किस प्रकार व्यूह

रचना की, किस प्रकार वाहिनी संचालन किया, किस प्रकार शत्रु की चाल को पहिले पकड़ा आदि बातें मैं दुहराना व्यर्थ समझता हूँ। भन्ते लिच्छिविगण, आप सिंह की योग्यता को इसी से समझ सकते हैं कि पार्श्व जैसे अद्वितीय सम्राट की विशाल सेना को सिंह ने एक ही आक्रमण में समाप्त कर दिया।

(गण का हर्षोल्लास)

ऐसे सिंह को इस समय जब कि लिच्छवियों पर भारी संकट आया है, पाकर हम अपने को सौभाग्यशाली समझ रहें हैं। हां, एक निवेदन मुझे कर लेने दीजिये। आपका सेनापति सुमन वृद्ध हो चला, उसकी सूखी हड्डियों में अब वह शक्ति नहीं, जिसकी इस समय आवश्यकता है। अतएव आप महानुभावों से मेरी प्रार्थना है, आयुष्मान सिंह को सेनापति बनाया जाय। युद्ध परिषद में रहकर केन्द्र में सैनिक संगटन का भार मेरे ऊपर रहे। भन्तेगण, विश्वास रखें मैं जो कुछ कह रहा हूँ लिच्छविगण का हितैषी बनकर कह रहा हूँ।

गणपति—भन्तेगण! सेनापति सुमन का यह प्रस्ताव सर्वथा सामयिक है। मैं उनसे सहमत हूँ और आशा करता हूँ आप भी होंगे। किसी को आपत्ति हो तो बोलें।

गण— हमें स्वीकार है।

गणपति—आयुष्मान सिंह हमारे सेनापति हुए।

(गण का हर्षोल्लास)

सुमन—भन्तेगण! मुझे आप के निर्णय से अपार प्रसन्नता हुई। आप महानुभावों के सामने मैं एक प्रस्ताव और रख रहा हूं। घायलों

को रणक्षेत्र से हटाने का और उनकी सेवा सुश्रुषा करने का अधिकार लिच्छवियानियों को मिलना चाहिये। मुझे विश्वास है यह काम पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां ही भली प्रकार कर सकती हैं; और इस कार्य का भार सेनापति सिंह की धर्मपत्नी गांधारी रोहिणी को दिया जाय। इसे नारी-सेवा-दल की संज्ञा दी जाए।

गणपति—भन्तेगण! यह प्रस्ताव बहुमूल्य है। सेवा तो मातृजाति ही कर सकती है। गांधारी रोहिणी ने पाशर्व युद्ध में भाग लेकर अपने धातु का परिचय दे ही दिया है। अतएव इस नारी-सेवा-दल के संगठन का कार्य्य रोहिणी को ही दिया जाय।

गण—ठीक है, बहुत ठीक है।

गणपति—रोहिणी नारी-सेवा-दल की संचालिका हुई।

(गण का हर्षोल्लास)

सिंह—भन्तेगण! आपने अपने बच्चे का जो सम्मान किया है वह अपने को इसके योग्य नहीं समझता। किन्तु वह एक बात जानता है, दक्षिण के शत्रु को बज्जी की पवित्र भूमि को अपवित्र करने का कभी भी अवसर न देना उसका परम कर्त्तव्य है।

गणपति—गणसन्निपात समाप्त होता है।

दृश्य — ४

[वैशाली में नारी-सेवा-दल की गोष्ठि। रोहिणी, माणविका, क्षेमा और सेविकाएें। सभी क्षेमा का हाथ देख रही हैं।]

रोहिणी—(क्षेमा का हाथ देखती हुई) बहन क्षेमा! तुम्हारी लगन देख मैं गद्‌गद् हो रही हूँ।

क्षेमा— तुम्हारे उपदेशों का ही फल है बहन रोहिणी ! तुम्हारे हाथों से अपने हाथों को मिलाकर हम लिच्छवियानियां लज्जा से गड़ गईं। हमें अपने हाथों से घृणा हो गई। सचमुच ही ये हमें आम्रपाली के हाथ जँचने लगे, फिर मैंने अपने हाथों को ऐसा बना डाला।

मालविका-तुम पर हमें गर्व है क्षेमा। किन्तु दो ही तीन दिनों में तुम्हारे कोमल हाथ इतने कठोर कैसे बन गये ?

क्षेमा— उस दिन बहन रोहिणी के उपदेश मेरे हृदय में गड़ गये, । मुझे बड़ा ही क्षोभ हुआ। अपने कोमल हाथों को मैंने कलंक समझा और उसी दिन मां के बार-बार मना करने पर भी दासी के साथ मैंने चावल कूटना आरम्भ किया, फिर तब तक नहीं रुकी, जब तक दोनों हाथों में ये छाले न पड़ गये।

मालविका-(सानन्द) अच्छा, और तुम्हें दर्द नहीं मालूम हुआ ?

क्षेमा— दर्द ! मालूम हुआ। लेकिन मैंने मन से कहा, यदि इन छालों में दर्द लगेगा तो कठिन सेवा व्रत भला कैसे निभेगा। गण-तन्त्र ने हममें विश्वास कर नारी-सेवा-दल बनाकर हमें सेवा करने का जो महत्त्व प्रदान किया है, उसका क्या होगा ?

मालविका-ठीक, बहुत ठीक ! और जिस कार्य्य का भार हमें दिया गया है, उसके योग्य तो हमें बनना ही चाहिये।

क्षेमा— बहन रोहिणी के हाथों को देखकर, उन हाथों को देखकर जिनने सौ बिम्बसार के बराबर बलशाली पार्श्व गज के मद को चूर किया है, अपने हाथ से ग्लानि हुई।

रोहिणी—(क्षेमा का चिबुक हिलाकर) खूब !

क्षेमा — फिर मुझे गर्व है कि तीन दिनों के अभ्यास से मैंने अपने हाथों को कुछ काम योग्य बना लिया है।

रोहिणी—बहनो, आप सभी बहनें क्षेमा का हाथ देख रही हैं। उस दिन निश्चय ही आपलोगों के कोमल शरीर और कमल के समान हाथ देखकर मैं क्षुब्ध हुई थी। नारी-सेवा-दल के श्रेय में सन्देह होने लगा था—किन्तु आज बहन क्षेमा ने प्रत्यक्ष कर दिया कि कोमल लिच्छवियानियां समय पर इस्पात बन सकतीं हैं।

माणविका-अवश्य बन सकती हैं।

रोहिणी—बहनो! युद्ध में सेवा ही के लिये नहीं वरन् अपने स्वास्थ्य के लिये हमें शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता है। आज सिर में दर्द है, आज पेट में, आज कमर में, आज अन्न नहीं पचा, आज भूख नहीं लगी इन सभी बीमारियों को यदि आप दूर से ही नमस्कार करना चाहती हैं तो अपने घर का काम स्वयं करें। और अभी तो आवश्यकता ही दूसरी है। उपदेश से उदाहरण भला है यह कर दिखाया बहन क्षेमा ने।

सेविकाएँ – हम भी वैसा ही करेंगी, हम भी वैसा ही करेंगी।

रोहिणी—यदि ऐसा है तो आप इन हाथों को बदलिये। बदलने का उपाय है—कूटना, पीसना, खाना बनाना, अपना और अपने बच्चों का सारा काम स्वयं करना। व्यर्थ की चर्बी का भार ढोने से बच जायँगी। शरीर में स्फूर्ति आवेगी, आप रोग मुक्त होंगी और नारी-सेवा-दल सफल होगा।

सेविकाएँ—हम सभी तैयार हैं, हम सब करेंगी।

रोहिणी—तो चलें। आचार्य्य अग्निदेव जी से टूटी हड्डियों पर पट्टी बांधने की कला सीखें।

(सब का प्रस्थान)

दृश्य — ५

[उल्काचेत्र में सैनिक शिविर । सेनापति सिंह, सेना-नायक पुष्प, वैद्य अग्निवेश]

सिंह— सेना-नायक पुष्प, मुझे आपकी तैयारी देख प्रसन्नता हुई। मही के दुर्गों में सुरक्षित नावें हमारे पक्ष में फैसला दिलाने में भारी सहायक होंगी। मगध के पास सबका जवाब है, किन्तु इन तरियों का जवाब नहीं। हमारी सैनिक-तरियों के भटों के विष-बुझे तीर जब मगध वाहिनी पर बरसेंगे तब मेरा विश्वास है, मागध टिक नहीं सकेंगे।

पुष्प — सेनापति जी से मैं भी सहमत हूँ।

सिंह— हां, किन्तु इस बात पर ध्यान बराबर रखना होगा कि हमारे सैनिक किसी भी हालत में गांववालों की कोई चीज जबर्दस्ती न लें, और न उन्हें किसी तरह की तकलीफ दें। युद्धभूमि के सैनिकों को छोड़ सभी आनन्दपूर्वक विना किसी विघ्नबाधा के अपने कार्य्य करते रहें।

पुष्प— यह तो वैशालीवासियों के निजी गुण हैं।

सिंह— वैद्यवर आचार्य्य अग्निवेशजी! आपकी तैयारी सन्तोषजनक है न?

अग्नि— क्या कहूँ सेनापतिजी! सत्तरबर्षों से लिच्छविनियों को देखता आ रहा हूँ। किन्तु जिस उत्साह, जिस लगन और जिस अथक परिश्रम का साम्राज्य अभी लिच्छवियानियों में देख रहा हूँ, वैसा कभी नहीं देखा। धृष्टता क्षमा की जाय तो कहूँ, लिच्छवियों में वह शान नहीं है जो इस समय लिच्छवियानियों

में है। आर्य्या रोहिणी देवी की देखादेखी, लिच्छवियानियों ने अपने अपने कमल सदृश हाथों को पत्थर सदृश कठोर बना लिया है। जिनकी उङ्गली किसी कड़ी वस्तु से छू जाने पर मुड़क जाती थी, वही अब कर्मान्तों में कुदाल चला रही हैं, धूप में रहने की आदत डाल रही हैं। कोमल बनने में जो अम्ब-पाली से होड़ ले रही थीं अब वही रोहिणी को अपना आदर्श बना बैठी हैं। यही कारण है कि नारी-सेवा दल की सारी व्यवस्थाएँ इतना शीघ्र पूर्ण हो सकीं।

दूत-- (प्रवेश कर) लिच्छवि सेनापति की जय हो। शत्रु सेना पाटलि-ग्राम से चल चुकी। पांच नावें गंगा के बीचोबीच आ पहुँचीं।

सिंह-- आः! (तनिक सोचकर) सेनानायक पुष्प! कुछ तरियों को खोल दो। शत्रु की नावें गंगा में ही डुबो दो युद्ध का प्रारम्भ अभी ही हो। सावधान शत्रु किनारे न लग सके।

(वेग से प्रस्थान)

नेपथ्य में रणवाद्य

दृश्य—६

[युद्ध भूमिका निरीक्षण करता हुआ सेनानायक पुष्प]

पुष्प — वाह! पहले ही दिन आठ सौ शत्रु समाप्त! कार्य्यारम्भ अन्तिम फल का परिचायक है।

दूत— (प्रवेश कर) शत्रु के रथ अपने धनुर्धरों को लिये उल्काचैल के गङ्गातट की दलदल भूमि में फँस गये हैं। हमारी अश्व सेना ने उन्हें घेर लिया है। क्या आज्ञा है?

पुष्प — कपिल वहां है ?

दूत— जी नहीं।

पुष्प — कपिल से कहो घटनास्थल पर जायें। किन्तु शत्रु यदि शस्त्र रख दे, तब आक्रमण रोक दें। शत्रु के जितने भी रथ आ रहे हैं, सभी उल्काचेल में उतरने दिये जायँ। गंगा के बीच उन पर आक्रमण न हो।

दूत— जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

पुष्प— (प्रसन्न) अत्याचारी इसी तरह आप ही आप फंसते जा रहे हैं। शत्रु के सभी रथों पर विना किसी चेष्टा के ही हमारा अधिकार होता जा रहा है। दलदल में फँसे शत्रु की छटपटाहट को अपनी आंखों चल कर देखूँ।

(प्रस्थान)

(नेपथ्य में रणवाद्य और कोलाहल)

दृश्य—७

[उल्काचेल में सेनापति सिंह का प्रधान शिविर

सेनापति सिंह और अग्निवेश]

अ०— व्यवस्था दिन पर दिन अच्छी होती जा रही है। काम काम को सिखलाता है। हमें इतने घायलों को एक समय चिकित्सा करने का कभी मौका नहीं मिला था किन्तु दिक्कतें आपही आप सुलझती जा रही हैं। हमने भिन्न-भिन्न प्रकार के घायलों को भिन्न-भिन्न स्थानों में रखा है। जिनकी चोटें बहुत खतरनाक हैं उन्हें अलग।

सिंह—व्यवस्था सुन्दर है।

अ०—सभी लिच्छवियानियों में गजब का जोश आया हुआ है। उनकी नायिका रोहिणी की आज्ञा ऐसी होती है जैसी कि लिच्छवि सेनापति की।

सिंह—हां आचार्य ! लिच्छवियानियां न रात गिनती हैं न दिन, और न दो-पहर की तपनी धूप। वे तीरों की वर्षा में कूदने से भी नहीं झिझकतीं। एक भी घायल को थोड़ी देर के लिये भी रण-क्षेत्र में छोड़ रखना वे अपना अपमान समझती हैं।

अ०—तभी तो घाव मेरे पास ताजे आते हैं, और घाव जितने ही ताजे मेरे पास पहुँचते हैं, उतनी ही अधिक उनके अच्छा होने की आशा रहती है और तारीफ यह कि अपने और शत्रु के घायल सैनिक समान रूप में सेवा पाते हैं।

सिंह—यह मेरा आदेश है आचार्य ! शत्रु तभी तक मेरा शत्रु है जब तक सशस्त्र है। घायल और निरीह शत्रु दया का पात्र है।

अ०—हां सेनापति ! इस युद्ध ने हम वज्जी निवासियों में एक नये जीवन का संचार किया है। बूढ़े-बूढ़ी सभी इसमें किसी न किसी रूप में सहयोग देना चाहते हैं। मुझे कम से कम माण-विका से तो ऐसी आशा न थी। वह जिन्दगी भर अपनी मांग से मुझे तंग करती रही।

सिंह—तंग ?

अ०—हां, बहुत। जब उसको पहलीबार बच्चा होने वाला था उसने मेरी जान खा डाली। कहती, एक बन्दर लाओ मेरा बच्चा खेलेगा !

सिंह—जिन्दा ?

अ०—नहीं लकड़ी का खिलौना। जब बन्दर लाया तो कहा इसे लाह से रंग वालाओ। फिर कहा बिल्ली लाओ, मेरा बच्चा खेलेगा।

सिंह—और आचार्य्य, आप सब खिलौने लाते रहे!

अ०—क्या करता सेनापति! माणविका तरुणी थी, उसके कोप से डरता था। एक घर खिलौने भरवा लिया और जानते हैं हुआ क्या? लड़की।

सिंह—फिर खिलौने ?

अ०—अगले लड़के की आशा में रख लिये गये, किन्तु उसमें पांचों लड़कियां हुईं, केवल लड़कियां। जिस माणविका को अपनी देह हिलाना-डुलाना पसन्द न था वही माणविका सुबह से शाम तक घायलों की सेवा में दौड़ती फिरती है—घायलों की पट्टी बांधना, बिछौने बिछाना, पथ्य देना। वह तो बिल्कुल ही बदल गई। इस युद्ध के बहाने गांधारी-बहू के कारण लिच्छवियानियों के जीवन सुधर गये। (पार्श्व की ओर) वह देखिये, आ रही है हमारी बहू।

रोहिणी—(आकर प्रणाम करती हुई) कोई आज्ञा है सेनापतिजी!

सिंह— अग्निवेशजी तुम्हारी बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं, कह रहे हैं……

रो०— मुझे अपनी प्रशंसा सुनने का समय नहीं। आपलोगों के काम तो दिन ही में समाप्त हो जाते हैं—मारना—काटना, शत्रु को क्षत-विक्षत करना; किन्तु मेरे काम तो दिन रात बराबर चलते हैं।

अ०— बल्कि रात में घायलों की सेवा की अधिक आवश्यकता है

रो०— हां आचार्य! और वह भी दोनों पक्षों की—अपनी और शत्रु की।

अच्छा तो लौटती हूँ। (प्रस्थान)

अ०— वाह! तनिक भी यहां नहीं रुकी!

सिंह— वह प्रतिदिन इसी समय आकर आज्ञा पूछ जाती है, फिर अपने शिविर में लौट जाती है।

अ०— धन्य हो देवि! लिच्छविगण तुम्हें युगयुगान्तर तक याद रखेंगे।

दृश्य ८

[उल्काचेल में दो कृषक बातें करते आते हैं।]

कृषक १– भाई, घमासान युद्ध हो रहा है।

कृषक २– हां, किन्तु प्रसन्नता की बात है कि एक ओर युद्ध होता है और दूसरी ओर हम अपने हल आनन्दपूर्वक चलाते रहते हैं। हमें कोई तंग नहीं करता और न कोई चीज ही जबर्दस्ती लेता है। शांतिपूर्वक हम अपने कार्य करते जा रहे हैं, जैसे कुछ हो ही नहीं रहा हो।

कृषक १—हां, ठीक कहते हो। क्या ही अच्छी युद्धनीति है!

(प्रस्थान)

दृश्य ९

स्थान—युद्ध भूमि का एक भाग

[मगध सेनापति भद्रिक का शव, मगध उपसेनापति उदायी, अग्निवेश, कपिल, पुष्प]

अग्निवेश–(नाड़ी छोड़कर) सब शेष…

सिंह— (खिन्न) आचार्य्य! कोई आशा नहीं?

[अग्निवेश सिर हिलाते है]

आह, अभी एक क्षण पहले जिस सेनापति भद्रिक की

उदायी— अवश्य, मेरा यह सौभाग्य होगा। (उल्लास से) शत्रुओं के प्रति ऐसे सत्कार के भाव! मैं तो मंत्रमुग्ध हो रहा हूं लिच्छवि सेनापति! कम से कम अपनी तुच्छता तो स्वीकार करता हूं,। शत्रुओं के प्रति मगध, क्या लिच्छवि को छोड़ कोई भी इतना उदार नहीं। घायल शत्रुओं के प्रति लिच्छवियों के जो व्यवहार हुए हैं–हो रहे हैं, वह इतिहास में अक्षुण्ण रहनेवाला अकेला दृष्टान्त है। (जल पीना)

सिंह— महाराज बिम्बसार के मंगल हाथी पर सेनापति भद्रिक क्यों चढ़े थे, आप कह सकते हैं, उपसेनापतिजी!

उदायी— मगध ने दो नर रत्न पैदा किये, एक राजनीतिज्ञ ब्राह्मण मंत्री वर्षकार और दूसरा युद्धविशारद सेनापति भद्रिक। महाराज सेनापति के गुण को जानते थे। उनके लिये नालागीरि मंगल हाथी क्या, अपने प्राण तक दे सकते थे।

अग्नि०—क्या कहा? नालागीरि मंगल हाथी, जिसकी इतनी प्रसिद्धि है? कहां है वह? क्या आप उसे पकड़ लाये?

सिंह— जी हां, वहां (एक ओर इशारा कर) खड़ा है और यह है उसका हाथीवान। (हाथीवान से) यदि तुम्हें नालागीरि मंगल हाथी के साथ छोड़ दें तो क्या तुम राजगृह चले जाओगे?

हाथीवान– (आश्चर्यमुद्रा) छोड़ देंगे!

सिंह— हां, महाराज बिम्बसार को सेनापति भद्रिक और मालागिरि हाथी दोनों का एक साथ का दु:ख असह्य होगा। मंगल हाथी को लौटा देख कुछ सान्त्वना मिलेगी। मैं एक पत्र महाराज

बिम्बसार के नाम लिख देता हूं। तुम हाथी को लेकर सुरक्षित पहुंच जाओगे।

(हाथीवान दांतों तले उंगली दबाता है।)

उदायी—— उदारता अपनी सीमा पार कर रही है। ऐसे देव-तुल्य मनुष्यों से-पृथ्वी पर के देवता लिच्छवियों से—युद्ध ठान कर महाराज ने निश्चय ही भूल की।

कपिल—— (प्रवेश कर) उस युवक का कुछ भी पता न चला सेनापति जी, मुझे खेद है।

अ०—— किस युवक का ?

सिंह—— आश्चर्य है आचार्य्य, आज जब मैं सेनापति भद्रिक पर आक्रमण कर रहा था, इस हाथीवान ने अपने हाथी को मुझपर आक्रमण करने का संकेत किया, उसी समय मैंने एक लिच्छवि तरुण को अपने घोड़े पर खड़े हो छिपकिली की भांति हाथी की पीठ पर सरकते देखा। फिर बिजली की तरह पहुँच कर उसने इससे (हाथीवान की ओर) अकुंश छीन कर हाथी को ज्यों का त्यों खड़ा रखा और तभी मैं सेनापति भद्रिक पर आक्रमण कर सका। धन्यवाद के कुछ शब्द मेरे मुँह से निकलना ही चाहते थे कि वह तरुण छूमंतर। यदि वह उस मौके पर न पहुँच जाता तो निश्चय ही भद्रिक के शव के स्थान पर मेर शव होता।

हाथीवान- सच है स्वामी ! अचानक मेरा अकुंश छीन कर उन्होंने मुझे भौंचक बना डाला। अनेक युद्ध में भाग लेने का मुझे भी गौरव प्राप्त है स्वामी, किन्तु वैसे दु:साहसी वीर के दर्शन

मुझे न हुए। मुझसे अकुंश छीनते समय उनकी बांयी हथेली में चीड़ा लग गया, फिर भी उफ़् नहीं।

सिंह— (प्रसन्न) चीड़ा लग गया! बांयी हथेली में! (कुछ सोचकर) आचार्य अग्निवेश जी, वैसे युवक को ढूँढ़ निकालना अब आपका काम है। मिलने पर मैं उसकी पूजा करूँगा—सारे लिच्छवि उसकी पूजा करेंगे।

अजित—— (सोचता हुआ) चीड़ा ··· बांई हथेली में ··· (प्रसन्न मुद्रा) जान गया ··· अभी लाता हूँ। (प्रस्थान)

अश्वारोही—(प्रवेश कर) लिच्छवि सेनापति की जय हो, गणपति ने यह पत्र दिया है।

सिंह— (पत्र पढ़कर) हमारी विजय से गणपति गद्-गद् हो रहे हैं। कल संध्या तक हमलोगों को वैशाली पहुँचना है। गणतंत्र की ओर से कल तथागत गौतम का सम्मान प्रदर्शन होगा और तथागत लिच्छवियों को दीक्षित करेंगे। हमलोगों की उपस्थिति अनिवार्य्य है।

पुष्प— तथागत वैशाली आये हैं? हमलोगों को उनके दर्शन अवश्य करना चाहिये।

सिंह— केवल हम ही लोगों को नहीं, बल्कि घायलों को भी कल संध्या तक वैशाली पहुँचना है। यहां कोई न रहेगा। उनकी परिचर्या वहीं होगी। सारा प्रबन्ध रातो रात करना है सेना-नायक पुष्प!

पुष्प—— जो!

(अग्निवेश का आगे-आगे, रोहिणी का पीछे से सकुचाती प्रवेश)

अग्निवेश—लीजिये सेनापति जी ! वह लिच्छवि तरुण आपके सामने है।

सिंह— लिच्छवि तरुण……रोहिणी ! (पट्टी बँधी हथेली का निरीक्षण कर) तुम ! (आश्चर्य मुद्रा)

(मुँह पर मुस्कुराहट खिल जाती है पर्दा बदलता है)

दृश्य—१०

[युद्ध में विजय के उपलक्ष में चांदनी रात में लिच्छवियानियों का यूथनृत्य तथा संगीत]

आओ, नवजीवन निर्माण करें।
चन्दा बन छाएँ आकाश में,
सौरभ में घुलमिल सुवास में,
जीवन के सुख में, विलास में,
आओ, नवजीवन का गान करें।
आओ, नवजीवन निर्माण करें॥

दृश्य —११

स्थान – वैशाली में सन्निपात-भवन

[गण-सन्निपात की बैठक, बीच में मंचपर आसीन गणपति; उनके दक्षिण पार्श्व में सेनापति सुमन तथा अन्य पदाधिकारी, वाम पार्श्व में सेनापति सिंह, पुष्प, कपिल, आदि एवं नारी-सेवा-दल की सदस्यायें। स्त्री पुरुष सभी के शरीर पर प्रव्रज्या के उपयुक्त काषाय वस्त्र दाहिना कंधा खुला]

गणपति—भन्तेगण, चिरंजीवि सिंह ने जो कर दिखाया उस पर सारी वैशाली, सारी वज्जी भूमि को गर्व है। लिच्छवियों के शत्रुओं को इतना शीघ्र परास्त करना इन्हीं का काम है। इनके कौशल-

गान, यशोगान और इनकी वीरगाथा सम्पूर्ण प्राची में फैल गयी है। ऐसे वैशाली-गौरव की हम जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है।

सिंह— भन्ते गण! मैंने जो कुछ किया है, अपनी जन्मभूमि के प्रति कर्त्तव्य समझ कर किया है। हां, सेनानायक पुष्प, कपिल तथा प्रत्येक लिच्छवि धन्यवाद के पात्र हैं अवश्य। यदि इन लोगों का हार्दिक सहयोग मुझे न मिला होता, तो कदापि इतना शीघ्र सफलता न मिलती; किन्तु इन सबसे बढ़कर मैं आचार्य्य अग्निवेश और इनके नारी-सेवा-दल की प्रशंसा करता हूँ। उन लोगों ने भारत के भावी इतिहास में एक नया अध्याय खोला है।

[गणपति पहले सिंह को, फिर पुष्प, कपिल, अग्निवेश, इत्यादि को माला द्वारा सम्मान प्रदर्शित करते हैं, प्रत्येक वार जय-जयकार गणतंत्र के सदस्यों द्वारा होता है।

गणपति— (पार्श्व की ओर देखकर) अच्छा, महाश्रमण तथागत गौतम पधार रहे हैं।

[सभी उठकर खड़े हो जाते हैं, गणपति, स्त्रियों की ओर संकेत करते हैं; वे गाने लगती हैं]

पधारो करुणामय भगवान!
जग में हाहाकार मचा है,
घृणा-द्वेष का रास रचा है
प्रभुवर दो हमको वरदान
पधारो करुणामय भगवान!

गणपति—(आगे बढ़कर) भगवन्! आपके शुभागमन से सारी लिच्छवि-

भूमि पवित्र हुई। हम वृज्जि-गणतंत्र की ओर से आपका चरण छूते हैं।

(चरण छूना और आसन ग्रहण करने का संकेत से अनुरोध करना)

बुद्ध—(आसन ग्रहण कर) गणपते, आपके गणसन्निपात की श्रीवृद्धि हो। मैं हृदय से आपके गण-राष्ट की मंगल कामना करता हूँ। (भिक्षुओं की ओर संकेत कर) भिक्षुओ, जिन्होंने तावतींश देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों की इस परिषद को ध्यान से देखें और इस परिषद् से तावतींश देवताओं की परिषद् का अनुमान करें। भन्तेगण, आज जब चारों ओर घृणा, द्वेष एवं प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही है; जब सारी सृष्टि उस ज्वाला में भस्मीभूत हो रही है, तब लिच्छवि गण-राष्ट्र ने साम्य, एकता, और संघ-शक्ति का जो आदर्श उपस्थित किया है वह निस्सन्देह अभिनन्दनीय है। जबतक यह वृज्जि-सन्निपात पूर्णरूप से संघटित होता रहेगा, जवतक उसके सदस्यों में सन्निपात के नियमों के प्रति आदर का भाव रहेगा, जबतक लिच्छवि विलास के जीवन से घृणा करते रहेंगे; जबतक कठोर शारीरिक परिश्रम का महत्त्व और तुच्छ काम को भी गौरव पूर्वक स्वयं करने की भावना उनमें बनी रहेगी; जबतक उनमें नारीवर्ग के प्रति सम्मान का भाव रहेगा; जबतक वृज्जि गणराष्ट्र सदाचार, धर्म, और करुणा की भावना से संचालित होता रहेगा; और उसका संचालन सेनापति सिंह जैसे कर्मठ व्यक्ति के हाथों होता रहेगा; और जबतक वैशाली की पवित्र

भूमि में रोहिणी जैसी नारियां रहेंगी और उनमें विरोधियों के प्रति भी इसी प्रकार सेवा, करुणा एवं सहानुभूति की भावना भरी रहेगी, तबतक विश्वास है वज्जि गणतंत्र का सूर्य्य जगमगाता ही रहेगा।

गणपति– भगवन्, हमलोग आपके इस आशीर्वाद से कृतार्थ हुए। गण-सन्निपात महा श्रमण के शुभागमन के इस सुअवसर पर प्रव्रज्या ग्रहण करने को उत्सुक है।

गौतमबुद्ध–लिच्छविगण, सत्य और शांति के प्रति आपके हार्दिक आग्रह को देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। दुःखों से पीड़ित जीवन में, निर्लिप्त कर्म–भावना ही वह ज्योति जगाए है, जिससे विश्व का कल्याण सम्भव है। ऐसी जागरूकता जब उत्पन्न है तो फिर विलम्ब क्यों ?

गणपति––(उल्लास पूर्वक)

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्म्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

सब––

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्म्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।